संपादकीय

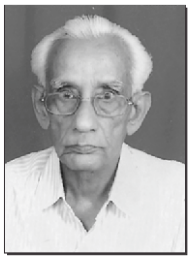

lR; D;k g\

"सत्य" के बारे में धर्मग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि–

असतो मा सद्गमय/सत्यं वद/धर्मं चर

X X X

सत्य सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्म सनातनः
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमागतिः।

(महाभारत)

(अर्थात् साधुजनों में "सत्य" सदा आदरणीय है। सत्य ही सनातन धर्म है। सभी सत्य का आदर करें। सत्य ही परम गति है।)

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाकै हिरदै साँच है, ताके हिरदे आप।।

(कबीर)

धरमु न दूसर सत्य समाना

(मानस)

इनमें कहा गया है कि मुझे सत्य की ओर ले चलो। सत्य कहो और धर्म पर चलो। सत्य के समान और कोई धर्म नहीं है, सत्य सदा आदरणीय है। सत्य ही परम गति है। सत्य के बराबर कोई तप नहीं है आदि। परंतु फिर भी यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि आखिर "सत्य" है क्या ? हाँ, इससे यह आभास जरूर होता है कि "सत्य" कोई ऐसी चीज है, जिसकी सब धर्मग्रंथ कामना करते हैं।

इधर तुलसी मानस भारती के विद्वान लेखक आई.डी. खत्री की पुस्तक 'सत्य की पहचान' शीर्षक के अंतर्गत देखने को मिली है, जिसमें उन्होंने सत्य के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन किया है। उन्होंने 'सत्य' को लेकर जो कुछ कहा है। उनमें 'सत्य' का प्रयोग तो है 'परिभाषा' नहीं।

अन्य अनेक धर्मग्रंथों ने भी सूत्र को पकड़ कर सत्य को जानने की विशद विवेचना की है किंतु हम यहाँ 'सत्य' के मर्म को कोष के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

"सत्य" शब्द को जानने और उसके अर्थ को पकड़ने के लिए फिलहाल हम दो कोषों तक सीमित रहते हुए उनके माध्यम से "सत्य" को जानने का प्रयास करेंगे– एक तो है "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ" और दूसरा है "The Random House Dictionary of the English Language"

शब्दार्थ कौस्तुभ में सत्य के अर्थ दिए गए हैं–

1. यथार्थ, ठीक, वास्तविक, असल, ईमानदार, सच्चा और पुण्यात्मा।
2. पारमार्थिक सत्ता, नेकी, भलाई, पुण्य, शपथ, वादा।
3. "सत्य" युग को कृतयुग भी कहा जाता है यह चारों युगों में पहला है।
4. "सत्य" लोक का अर्थ है सातों लोकों में सबसे ऊँचा, जहां ब्रह्मा रहते हैं। ब्रह्मा सृजन के देवता हैं।
5. अश्वत्थ वृक्ष, श्रीराम, विष्णु आदि देवता।

इससे सिद्ध होता है कि संसार में जितनी पारमार्थिक वस्तु हैं उनमें श्रेष्ठ और शाश्वत कहे जाने वाली क्रिया–व्यापार–भाव–सुभाव सभी सत्य के अंतर्गत समाहित किये जाते हैं।

जब हम अंग्रेजी कोष– The Random House Dictionary of the English Language के माध्यम से सत्य (Truth) को समझने का प्रयास करते हैं तो हमें सत्य के निम्नलिखित अर्थ दिखाई देते हैं–

1. किसी पदार्थ की सही तथा वास्तविक स्थिति (True or actual state of a matter)
2. तथ्य तथा वास्तविकता के साथ समनुरूपता (conformity with fact or reality, verity)
3. कोई सत्यापित या निर्विवाद तथ्य, तर्क–वाक्य, सिद्धांत आदि (Verified or indisputable fact, proposition, principle or the like)
4. सत्य होने की स्थिति या गुण (State or character of being true)
5. वास्तविकता या वास्तविक अस्तित्व (actuality or actual existence)
6. अनुभवातीत ज्ञान से पृथक अभीष्ट या मूलभूत वास्तविकता (ब्रह्माण्ड का सत्य) (Ideal or fundamental reality apart from and transcending percieved experience, the truth of the universe)
7. किसी मानक अथवा मूलभूत के साथ सहमति (agreement with a standard or original)
8. ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, विश्वसनीयता (Honesty, integrity, truthfulness)
9. कोई प्रत्यक्ष अथवा स्वीकृत तथ्य, स्वयंसिद्ध बात (an obvious or accepted fact, truism; patitude)
10. स्थिति की यथार्थता अथवा स्वीकृत तथ्य (accuracy as of position or adjustment)

दोनों कोषों के शब्दार्थ जानने पर बोध होता है कि अंग्रेजी कोष "सतयुग", "सत्यलोक" अथवा श्रीराम, विष्णु आदि की बात नहीं करता जो भारतीय ज्ञान–परम्परा के आधार हैं जिनकी भारतीय संस्कृति में अक्षुण्ण स्थिति है। बाकी हिन्दी, अंग्रेजी दोनों कोषों में "सत्य" को पहचानने के कारक लगभग एक समान हैं। हाँ, अंग्रेजी कोष में विस्तार से समझाते हुए "सत्य" को कई रूपों में विभाजित करके पारिभाषित करने का प्रयास लक्षित होता है।

,u-,y- [kMyoky

ys[k

Hkkjrh; ukjh dk pMkUr xkjo dh egkxkFkk ^lqnjdkM*

'kkfr noUn [kj

गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस का यह सुंदर कांड पंचम सोपान है। इसमें आरंभ के चार सोपानों की फलाप्ति है और आगे वाले दो सोपानों की पूर्व पीठिका। प्रत्येक सोपान अपने भीतर कुछ विशिष्ट वृत्तियों को स्थान देता है। इस सोपान की भी अपनी विशेषतायें हैं–

प्रथम यह कि यह एक प्रकार से शान्तागार है। इसमें किसी प्रकार की कटुता, विद्वेष व दुर्भावना नहीं है। द्वितीय यह अपनी आराध्या के प्रति पूर्ण समर्पण का कांड है। तृतीय यह कि इसमें 5 नारियों का वर्णन है जो प्रकारान्तर से रामभक्ति से प्रेरित होती हैं। चतुर्थ यह कि इसी सोपान में हनुमान को अमोघ वरदानों की प्राप्ति होती है। यह हनुमान की स्वामिभक्ति के चरम निर्देशन का सोपान है। और यह कि यहीं से प्रकाण्ड पंडित व अतुलित बलशाली रावण के पराभव की सूचनाएं मिलने लगती हैं। यह कांड प्रधानतः हनुमानाधारित कांड है, जिसमें उनके सामने उपस्थित संभावित युद्ध में उनके द्वारा किये जाने वाले, शौर्य, पराक्रम, निरीक्षणशक्ति, प्रत्युत्मन्नमति, धैर्य व स्वामिभक्ति का पूर्ण निदर्शन होने वाला है। यहीं उन्हें अमोघ वरदानों की प्राप्ति होती है। इन्हीं वरदानों के कारण वे त्रिकाल पूज्य देवों में अग्रणी हो जाते हैं। इसी स्थान पर वे अपनी भक्ति के आधार श्रीराम की प्रिया सीताजी को "जननी" शब्द से संबोधित करके उनके वात्सल्य का प्रसाद पाते हैं। उनके आराध्य राम तो ब्रह्म स्वरूप ही हैं सीता उनकी प्रकृति हैं। साक्षात् ब्रह्म और उनकी प्रकृति हनुमान के सामने है। सीता तो अग्नि चेतस्विनी हैं, नचिकेता की तीन अग्नियों की स्वामिनी हैं, तीन लोकों की लक्ष्मी हैं। उनका तेज भौतिक अग्नियों से परे है। उनके लिये आदि कवि वाल्मीकि ने एक स्थान पर कहा था कि

तपसा, सत्यवाक्येन, अनन्य भक्त्या भर्तरि।
असौ विनिर्दहग्निं न तामग्निं प्रधक्ष्यति।

(ये अपने तप, सत्यवचन और पति के प्रति अनन्य भक्ति से अग्नि को जला सकती है उन्हें अग्नि नहीं जला सकती)

इस श्लोक में आये तीनों शब्द–तपसा, सत्यवाक्येन, अनन्य भक्त्या भर्तरि भारतीय नारी के भीतर बसे अदम्य शक्ति–स्रोतों का निदर्शन करते हैं। तप का

अर्थ कष्ट सहन करने की शक्ति, सत्य वाक्य– सत्य के प्रति अटूट निष्ठा और अनन्यभक्त्या भर्तरि का आशय पति के लिये अनन्य भक्ति, जो किसी भी क्षण उनसे विलग नहीं होती– से आशय है। साथ ही वे दया, दान, दक्षिणा के वास्तविक अर्थ को जीवन में उतारती रहती हैं।

रावण द्वारा सीता हरण की भूमिका गोस्वामी जी ने अरण्य कांड में ही बना दी थी। खर दूषण वध की बात सूर्पणखा से सुनकर रावण चिन्तित हो उठा था –

खर दूषण मो सम बलवंता।
इन्हहिं को मारइ बिनु भगवन्ता
सुर रंजन भंजन महिभारा।
जौ भगवंत लीन्ह अवतारा।
तौ मै जाइ बयरू हठि करिहहुँ।
प्रभु सर प्रान तजे भव तरिहहुं।।

यहीं सीता हरण का विधान बना। राम लक्ष्मण के मारीच की पुकार पर जाने के कारण– वही रावण कुत्ते की तरह मुंह छिपाता हुआ सूनी कुटी पर जाकर यती वेष में भिक्षा मांगने लगा।

सीता ने यती को भिक्षा मांगते देखकर उसी दान को सर्वोपरि मानकर लक्ष्मण रेखा भी लाँघ डाली और भिक्षा दी। वह भिक्षा लेने नहीं सीता को ही लेने आया था। उसकी बातों को सुनते ही सीता का तेजस्विनी रूप सामने आ गया। उसकी वास्तविकता जानकर सीता ने उसे फटकर कर कहा–

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा।
भएसि काल बस निसिचरनाहा।।

उसे क्षुद्र जीव खरगोश के नाम से लताड़ा। परंतु उनका हरण हो गया और वे लंका में अशोक वन में वन्दिनी बना दी गईं।

सुन्दरकाण्ड के आरम्भ में ही हनुमान को पहली स्त्री राक्षसी सुरसा मिलती है। जो उनकी बल बुद्धि की थाह पाने के लिये उन्हें भक्षण करना चाहती है। *"आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा"* कहकर अपने मुंह में समाने के लिये बार–बार मुंह बड़ा करती जाती है। यहां हनुमान का बल नहीं बुद्धि सामने आती है और वे तब तक उससे विनम्रता से चले जाने देने के लिये कहते रहते हैं जब तक वे उस मुंह को इतना बड़ा न हो जाने दें कि वे उसमें समाकर बाहर आ सकते हैं सहजता से। बस वह राक्षसी सुरसा इस प्रकार परीक्षा लेकर राक्षस भाव को छोड़ने के लिये विवश हो जाती है। यह आशीष देने वाली माता समान भाव को प्राप्त होकर राम प्रेम की ओर उन्मुख हो जाती है।

राम काजु सब करिहहु, तुम बल बुद्धि निधान।

राम काज करने के लिये उसके द्वारा दिया गया वचन है यह, हनुमान को यहीं से वरदान मिलने लगते हैं। पहला वरदान सुरसा से मिलता है। आगे चलने पर लंका के प्रवेश द्वार पर एक निशिचरी लंकिनी मिलती है, जो उन्हें आगे जाने से रोकती है। हनुमान उसे एक मुठिका मारते हैं और वह खून उगलती हुई धरती पर लोट जाती है। तभी वह बताती है कि ब्रह्मा ने मुझे पहचान बताई थी कि जब तू कपि के मारने से व्याकुल होगी तभी लंका का विनाश होने वाला होगा। वह भी उन्हें राम की विजय की बात बताकर अपने को हनुमान के दर्शन से धन्य मानती है। वह सत्संग की महिमा बताकर उन्हें आगे जाने को कहती हैं। वह भी राम भक्त हो जाती है। कामान्ध रावण अपनी इच्छापूर्ति के लिये सीता से प्रणय याचना करने आता है। अपनी स्त्रियों के साथ आकर साम के साथ दण्ड की भी बातें कहता है कि सीता एक बार मेरा प्रणय स्वीकार कर ले। तुझे अपनी पटरानी से ऊँचा स्थान दूंगा अपने राजभवन में। अन्यथा इसी चन्द्रहास तलवार से तुझे मौत के घाट उतार दूंगा। प्रलोभन भी देता है। सीता जो मानस में लज्जा शीला, ***"छिनु छिनु पिय बिधु बदन"*** निहारते रहने वाली चकोरी की

भांति राम चरण में दृढ़ प्रीति लगाये बैठी रहती है– अब अपना तेजस्विनी रूप दिखाते हुए उसकी बातों का तड़ातड़ उत्तर देती रहती है। पर पुरुष से बातें करते समय मर्यादा का भी पूरा ध्यान है और वे अपने सामने एक तिनका रखकर उसकी भर्त्सना करती हैं। वे राक्षसियों के पहरे में हैं फिर भी–

"सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ प्रकासा
सठ सूने हर आनेसि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही"

वे उस त्रैलोक्य विजय का दंभ भरने वाले रावण को अधम, निर्लज्ज, जुगनू, सठ (मूर्ख) और भी सूने में स्त्री चुराने वाला चोर कह देती हैं। क्या निडरता, क्या साहस, क्या विवेक, क्या मर्यादा पालन, कैसी दृढ़ता और क्या निधड़क वाग्मिता, और वह त्रैलोक्य को रुलाने वाला विद्रावण रावण मुँह की खाकर बिफर उठता है– फिर दंड की बारी आती है–

"सीता तैं ममकृत अपमाना।
कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होति न त जीवन हानी।।"

उसका उत्तर है कि

"स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।"

जिस चन्द्रहास कृपाण का भय रावण दिखा रहा है, सीता उसका आवाहन करती हैं– कैसा अकाट्य तर्क है कि कृपाण कि धार शीतल है और उनका हृदय विरह ताप से जल रहा है–

"चन्द्रहास हरु मम परितापं।
रघुपति बिरह अनल संजातं।।
सीतल निसित बहसि खर धारा।
कह सीता हरु मम दुख भारा।।"

मेरे कंठ में या तो श्रीराम की बाहें होंगी या तेरी तीक्ष्ण ठंडी धार, जिससे मेरे हृदय की राम विरह से उत्पन्न हुई आग ठंडी होगी।

साम, दाम, दंड तीनों व्यर्थ हो गये, अब भेद की बारी आती है– वह राक्षिनियों को बुलाकर उनसे सीता को तरह–तरह के प्रलोभन देने व त्रास देने के लिये कहकर चला जाता है।

हनुमान रावण दरबार में अपनी वाक्पटुता से रावण को इतना लज्जित कर देते हैं कि वह क्रोध में बौखलाया हुआ उनकी पूंछ में आग लगाने का आदेश दे देता है। हनुमान को मुँह माँगा मिल गया। वे जलती पूंछ लेकर लंका जलाने को कूद पड़ते हैं। इस बीच में सीता को त्रिजटा मिलती है। यह चौथी स्त्री है जो राक्षस योनि में जन्मने के बाद भी राम की प्रशंसा करती है। सीता उससे चिता बनाने को कहती है जिसमें वे अपने जीवन का अंत कर दें। त्रिजटा राम चरण अनुरागिनी है और विवेकशीला एवं निपुण व चतुरा है। वह राक्षिसियों को समझा कर उनसे सीता का आदर करने को कहती है। उसके भीतर अवश्यंभावी को जान लेने की क्षमता है। उसे स्वप्न आता है लंका के विनष्ट हो जाने और रावण की मृत्यु का भी। वे सब डर कर सीता चरण सेवन करने लगती हैं।

चिता बनाने की बात पर त्रिजटा समझाती है कि राम की शक्ति के आगे लंका का विध्वंस होना ही है। सीता धैर्य रखें, राम अवश्य आयेंगे और रात में अग्नि नहीं मिलेगी जो चिता बनाई जाये। त्रिजटा तो चली गई पर सीता के मन में अशोक के लाल पत्तों से ही आग मांगने की भूमिका बन गई।

गोस्वामी जी की नाटकीयता यहां दृष्ट्व्य है। लंका दहन के बाद हनुमान अशोक वृक्ष पर ही बैठकर सब दृश्य देखते हैं और सीता की असहनीय आकुलता के कारण वे वहीं से राम नामांकित मुद्रा गिरा देते हैं। मुद्रा का गिरना ही सीता से हनुमान

की भेंट का कारण बनता है। वे नीचे उतर कर सारी कथा सुनाकर धीरज देते हैं कि अब उनके दुख दूर होने का समय आ गया है। वे राम का विरह संदेश भी उन्हें सुनाते हैं। जितनी तेज आंच सीता को राम वियोग से है, उतनी ही आंच राम को भी है। दो पंक्तियों में इस युगल के निगूढ़ प्रेम का प्रकाशन होता है– *"तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा"*– यह संदेश सीता को हनुमान द्वारा मिलता है। यह दृश्य बड़ा भावनात्मक हो जाता है। संदेश के आदान–प्रदान से सीता के मन में हनुमान के लिये पुत्र का सा प्रेम उत्पन्न हो जाता है। वे उन्हें त्रिकाल में अमर होने का वरदान दे देती हैं–

अजर अमर गुन निधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।

ये वरदान हैं– अमरता, अजरता (वृद्ध न होना) गुणों की खान होना, राम से भी पुत्र का वात्सल्य पाना, और उनकी अमोघ कृपा के अधिकारी होना।

सुन्दरकाण्ड की वास्तविक सुन्दरता इन्हीं भाव विगलित क्षणों में समा गई है। परिणाम है कि हनुमान के हृदय में श्री राम सीता व उन दोनों के हृदय में सदा के लिये हनुमान का स्थान हो गया। सीता की दुर्द्धर्ष जिजीविषा इस बात की साक्षी है कि असहनीय कष्टों की चरमसीमा आ जाने पर भी भारतीय नारी धैर्य का अवलम्बन नहीं छोड़ती। वह कोमल और कठोर की संयुति होती है।

पाँचवी स्त्री सुन्दर कांड में मन्दोदरी है। रावण देव, दानव, गंधर्व आदि की कितनी कन्याओं को अपने राजभवन में स्थान पत्नी रूप में दिये हुए है, परंतु उसकी पटरानी मन्दोदरी ही है जो अपने जीवन व आचरण में भारतीयता के शाश्वत मूल्यों को स्थान दिये हुए है। पति परायणा होते हुए भी वह नीतियुक्त सन्दर्भों का पालन करती है। राम यद्यपि विपक्षी हैं परंतु मन्दोदरी ने उनके भीतर समाये, सत्य के परिपालन हेतु युद्ध को अंगीकार करने को उचित ही माना है।

कामान्ध और क्रोधान्ध रावण जब सीता पर प्रहार करने को उद्‌यत होता है तब मयतनया मन्दोदरी ने नीति वचन कहते हुए उसके हाथ पकड़ लिये। वह नीतिवचन क्या थे ? यही कि एक तो परस्त्री हरण फिर स्त्री वध दोनों ही महापाप है। वह रावण को बार–बार इस कुकर्म से रोकती है। इसी संदर्भ में आगे चलकर वह एकान्त में पति के चरण पकड़ कर विनती करती है कि प्रिय, राम सामान्य मनुष्य नहीं हैं, उनसे वैर छोड़ दीजिये, मैं हित की बात कह रही हूँ। नगरवासी इतने भयभीत हैं जबसे वानर लंका जला गया, राक्षसों की पत्नियों के गर्भ गिरे जा रहे हैं। लंका का क्या हाल हो रहा है। यह सीता आपके कुल रूपी कमल वनों में दुख देने वाली शीतकाल की रात्रि के समान आई हैं अतः हे नाथ! आप अपने सचिव को बुलाकर राम की पत्नी को उनके पास भेज दीजिये। कोई भी देवता आप का हित नहीं कर सकता चाहे वह ब्रह्मा व विष्णु ही क्यों न हों –

"तत्र कुल कमल विपिन दुखदायी।
सीता सीत निसा सम आई।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।
हित न तुम्हार संभु आज कीन्हें।।"

और भी कि राम के बाण अत्यंत भीषण होते हैं, वे राक्षसी सेना पर सर्प की भांति आकर जैसे सर्प मेंढकों को खा जाता है, वैसे ही वे राक्षसी सेना को खाने में समर्थ हैं। अतः आप अपना हठ छोड़कर सीता को राम के पास पहुँचा दें तभी राक्षस कुल का भला होगा।

कोई भी भारतीय स्त्री अपने पति का अहित होना नहीं देखना चाहती। मन्दोदरी सच्ची पतिव्रता

है, यह उसी पति–भक्ति का प्रमाण है कि वह शत्रु पक्ष के राम की वीरता का बखान करके रावण को उनके कोप से बचाना चाहती है। वह ममतामयी माता है। संभावित युद्ध में उसे अपने पुत्रों के प्राणों की चिन्ता है, आशंका से हृदय काँपता रहता है। राक्षस कुल में होते हुए भी मन्दोदरी ने भारतीय नारी के गुणों–स्नेह, ममता, मर्यादा, पातिव्रत, सत्यनिष्ठा, नीति परायणता आदि को सुरक्षित रखते हुए उनका प्रकाशन अपने आचरण एवं वाणी से किया है। निष्कर्षतः इस कांड में वर्णित सभी स्त्रियों की विशाल हृदयता, दृढ़ता, विवेक, धर्म सम्मत बौद्धिकता और उदात्त चरित्र के साथ संयत संयमित वाग्मिता ने सुंदर कांड को मानस का नवनीत कांड बना दिया है।

द्वारा श्री अमिताभ खरे, डी–7, न्यू मोती बाग, नई दिल्ली– 110023

ifr"Bku d vkxkeh dk;Øe

शुक्रवार 8 मार्च 19 से	संध्या 6:30 बजे	अंतराष्ट्रीय महिला दिवस मानस भवन एवं भोपाल कैंसर एसोसिएशन का संयुक्त आयोजन
शनिवार 9 एवं 10 मार्च 19	संध्या 6:30 बजे	डॉ. श्रीमती ज्ञानवती अवस्थी के प्रवचन
शनिवार 23 मार्च 19	संध्या 7:00 बजे	होली मिलन समारोह

रामनवमी महोत्सव 13 अप्रैल से 18 अप्रैल तक

शनिवार 13 अप्रैल 19	प्रातः 9:30 बजे	संगीतमय सुंदरकांड
	अपरान्ह 12:00 बजे	रामजन्मोज्सव/महाआरती/प्रसाद वितरण
रविवार 14 अप्रैल 19	संध्या 7:00 बजे	रामलीला मंचन/भजन संध्या
सोमवार 15 अप्रैल 19	संध्या 7:00 बजे से	भजन संध्या
मंगलवार 16 अप्रैल 19 से	संध्या 6:30 बजे	रामकथा –पं. उमाशंकर व्यास द्वारा
गुरूवार 18 अप्रैल 19 तक		लक्ष्मण चरित्र पर प्रवचन
शनिवार 22 जून से	कार्यालय समय	प्रबंधकारिणी समिति निर्वाचन
गुरूवार 29 जून तक		
बुधवार 17 जुलाई 19	प्रातः 11:00 बजे	सामान्य सभा की बैठक

ys[k

,frgkfld ifji{; e rylhnkl

Mk- je'k pn [kj

किसी भी महान रचनाकार की महानता को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि की जानकारी आवश्यक होती है। कोई भी महानता बड़ी–बड़ी युद्ध–विजय, राज्य–विस्तार और विशाल इमारतों के निर्माण से नहीं मापी जाती। इसके लिए जनविजय, मन विजय ही जरूरी है। आज तथाकथित सम्राट अकबर और जहांगीर की जयंतियां नहीं मनाई जाती हैं तुलसी जैसे संत पुरुषों की और उनकी "रामचरित मानस" जैसी विश्वविख्यात कृति की तो राष्ट्रीय चतुश्शताब्दी भी; इतिहास के जड़ पन्नों में विस्मृत परपीडंकों की नहीं, वर्तमान में भी परदुखकातरों जीवंतों की भी आयोजित की जाती हैं। तभी "मानस" के चार सौ वर्ष बीत जाने पर भी राष्ट्रीय कृतज्ञता आयोजन पर कहा–

व्यक्ति का यह नहीं, यह जन्मदिन कृतित्व का है
लोमहर्षक लेखनी संघर्ष के अस्तित्व का है
जागरूक संत का निष्पक्ष और निर्भीक चिंतन
क्रांतिकारी चिंतना के राशिमय व्यक्तित्व का है।

इसीलिए प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेण्ट ए स्मिथ ने उनका मूल्यांकन करते हुए अपने ग्रंथ– *"अकबर द ग्रेट मुगल"* में लिखा है–

Tulsi Das is the tallest tree in the magic garden of medieval Hindu poetry. His name will not be found in 'Ain e Akbary' or in the pages of Muslim Annalist or in the books of European authors based on the narratives of the Persian historians yet that Hindu was the greatest man of his age in India greater even than Akbar himself in as much as the conquest of hearts and minds of millions of men and women effected by the poet was an achievement infinitely more lasting and important than any or all the victoties gained by the monarch

यदि इतने पर भी बुद्धिजीवी सहमत न हों, उन्हें अब भी धुंधला दिखाई देता हो तो उन्हें एक और विदेशी चश्मा प्रस्तुत है। जार्ज ग्रियर्सन अपनी कृति– "इंडियन एन्टीक्वेरी" 1893 में पृ. 85 में लिखते हैं– **"I give much less the usual estimate when I say that fully ninty millions of people base their theories of moral and religious conduct upon his writings. If we take the influence exer-cised by him at the present time as our test; he is**

one of the three or four grerat writers of Asia over the Gangetic Valey his great work- The Ramayan- is better known than the Bible is in England."

"मानस" की इसी अंतरराष्ट्रीय ख्याति के कारण जहां रेवरण्ड एटकिंस ने इसका अंग्रेजी में काव्यानुवाद किया, वहीं वारन्निकोव ने रूसी भाषा में इसे अनूदित किया था। लोक मानस में इस लोक काव्य की प्रतिष्ठा के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा– "उनकी वाणी के प्रभाव से आज हिंदू भक्त अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होता है, महत्व पर श्रद्धा रखता है, शील की ओर प्रवृत्त होता है, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है, कठिन कार्य में उत्साहित होता है, दया में आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलंबन करता है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करता है।"

ऐसे प्रेरणा–पुरुष की विकास यात्रा को समझने के लिए, जो समान्य पुरूष से पुरुषोत्तम बन गया, उसके जीवन की राजकीय और सामाजिक परिस्थितियों एवं पारिवारिक परिवेश की मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों से परिचय आवश्यक है। वह युग सम्राट अकबर (1575–1605) और "जहांगीर (1623 तक) का युग था। तुलसीदास का जन्म सन् 1532 (संवत् 1589) में हुआ था, वे 9 वर्ष के थे तब हुमायूं को अफगान शेरशाह सूरी ने हराया था। जब तुलसी 10 वर्ष के थे तब सन 1542 में अकबर का जन्म हुआ था। हुमायूं की मृत्यु पर जब तुलसी 24 वर्ष के थे तब सन 1556 में अकबर का जन्म हुआ था। हुमायूं की मृत्यु पर जब तुलसी 24 वर्ष के थे तब सन 1556 में अकबर 14 वर्ष की उम्र में उत्तराधिकारी बना। उसी समय गुजरात में भीषण अकाल पड़ा था जो सन 1574 में भीषण तबाही में दोहराया। जब तुलसी 37 वर्ष के थे, जहांगीर का जन्म हुआ। सन 1569 से 1570 में "कवितावली" शुरू हुई जिसमें 42 वर्ष की आयु में उन्होंने उस दुर्भिक्ष की विभीषिका को दर्शाया है–

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोच वस
कहें एक एकन सों कहां जाई, का करी?"

तभी सन 1574 में "राम चरित मानस" का लेखन भी प्रारंभ हुआ जिसके उत्तर कांड में उल्लेख करते हुए लिखा– *"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,*
सो नृप अवस नरक अधिकारी।' तुलसी जब 49 वर्ष के थे तब सन 1581 में अकबर ने अपना "दीन ए इलाही" धर्म चलाया। तभी "मानस" भी 7 वर्ष की श्रम साधना से पूर्ण हुआ था। जब तुलसी 66 वर्ष के थे तब सन 1595–98 में संपूर्ण भारत में भी भीषण अकाल, पड़ा था जिसका वर्णन "विनय पत्रिका" में है। जब वे 73 वर्ष के थे सन 1605 में अकबर की मृत्यु पर, 36 वर्षीय जहांगीर सम्राट बना। तुलसी ने 91 वर्ष की आयु (1623) तक 18 वर्ष उसके शासनकाल में कष्ट में व्यतीत किए–

"संवत सोलह सो असी, असी गंग के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।'

संत तुलसीदास के जीवन की यह विकास यात्रा जिन उतार चढ़ावों से गुजरती हुई सामाजिक विसंगतियों से भी कैसे प्रभावित हुई, इसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव का विश्लेषण भी दिलचस्प होगा। जन्म से ही उनने जिन विद्रूपताओं को भोगा वे आगे उनकी जिजीविषा के आगे टिक नहीं सकीं और वह यंत्रणापूर्ण यात्रा संघर्षों में भी आगे बढ़ती गई। उनके यथार्थवादी धरातल के खुरदरेपन के अंतर्साक्ष्य उनकी रचनाओं– कवितावली, गीतावली, दोहावली, विनयपत्रिका, हनुमान बाहुक, बरवै रामायण में बिखरे हैं। बचपन के दैन्य और करुणा को वे सामाजिक व्यथा से जोड़कर ही महान कृतियां दे पाए। उनकी स्पष्टवादिता देखें–

"जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पुनि जननी जनक को।
बारे तें ललात, बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हों चारि फल चार ही चनक को।'

ये "भिक्षां देहि" में "प्राप्त चार चने के दाने ही मानो– अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष– चारों फल की प्राप्ति थी। ईश्वर न करे बचपन में किसी बालक का भूख से "ललात व बिललात" शब्दों से सामना हो। उन्होंने अपनी गरीबी के यथार्थ को महिमा मंडित नहीं किया, बल्कि साहस से स्वीकारा–

"जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागि बस खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।'

कुछ छुपाकर अपने दारिद्र पर उन्होंने ब्राह्मणत्व की महानता नहीं थोपी। तरुणाई आते आते जातीय विघटनों, विडंबनाओं ने पीछा नहीं छोड़ा। मुंह तोड़ जवाब दिया

"धूत कहें, अवधूत कहें,
रजपूत कहें, जुलहा कहे कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब,
काहू की जात बिगार न सोऊ।।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को,
जाको रुचे सो कहे कछु कोऊ।
मांग के खाइबो मसीत में सोइबो,
लेबे को एक, न दैबे को दोऊ।।'

उन्हें तो पण्डों ने लात मारकर बाहर निकाल दिया था। उन्होंने संस्कृत की जगह लोक भाषा अवधी को अपनाया। शैवों को वैष्णवी राम कथा रुची नहीं। पर तुलसी झुके नहीं और फटकारा– *मांग कर खाता हूं और मस्जिद में सोता हूं। मुझ सन्यासी को लेना एक न देना दो मुझको न किसी घर ब्याह रचाना बेटों का। भिक्षा भोजन, मस्जिद शयन, और राम भजन कहें व्यर्थ, क्या अर्थ धूर्त, खल, खोटों का।* मुहावरेदानी में भी कितनी लोक सच्चाई है। उन पर जातीय संकीर्णता का आरोप झूठा है–

"मेरी जात पांत, न चाहों काहू की जात पांत
कोऊ मेरे काम को, न हों काहू के काम को।
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच सोच कहू
का काहू के द्वार पड़ो, जो हों सो हों राम को।'

इस तरह यायावर तुलसी की जीवन यात्रा रत्नावली से विवाहोपरांत अतिशय अनुराग और परित्याग के झटके से विराग के झूले में झूलती रही। काम और राम के द्वंद्व में यद्यपि काम पराजित हुआ पर उसकी मनौवैज्ञानिक ग्रंथि उन्हें प्रकारांतर से सालती रही। राम वन गमन में उन्हें छोड़ने आए सचिव सुमंत के मनोभावों का पश्चाताप देखिए–

"जिमि कुलीन तिय साधु सयानी,
पति देवता करम मन बानी
रहे करम बस परिहरि नाहू,
सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू।'

नारी प्रसंग आते ही वे आवेश और आक्रोश से भर जाते थे। इस मानसिकता से जूझते हुए उन्हें रत्ना की करुण छवि दिखाई देती थी। "माया" के मिस उन्होंने नारी को खरी खोटी सुनाई। रत्ना का परित्याग उन्हें सीता माता के चरित्र के आत्मार्पण में शांत हुआ। "मानस" के आदर्शवाद से परे आगे वे यथार्थवादी हो गए और फिर सत्यनिष्ठ मानवतावादी। जिस तरह एक बार गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में रंगभेदी नीति के कारण रेल के फर्स्ट क्लास के डब्बे से सामान सहित बाहर फेंक दिए जाने से उनके मन में अंग्रेजों को देश से उखाड़ फेंकने की ग्रंथि बनी, वैसी ही ग्रंथि तुलसी के मन में भी पण्डों द्वारा उन्हें बाहर निकालकर मस्जिद में आश्रय लेने को विवश करने पर उस पोंगापंथ से मुक्ति दिलाने की बनी थी जिसे उन्होंने मुगलों के रावणीराज में एक सांस्कृतिक जागरण में नव रूप दिया। ममता के संस्कार रहित और अतिशय रत्नानुराग सहित अंततः उनका कामनानुराग, रामानुराग में मार्गांतरित होकर लोकानुराग में ढलता गया जिसने दृढ़ इच्छाशक्ति से विश्व साहित्य पटल पर उन्हें स्थापित कर दिया।

73, विवेकानंद नगर, दमोह, म.प्र.

dfork

dkb xhr fy [kk

i- fxfjekgu x :

मानवता का व्याकुल मन कहता मुझसे।
तुम तेा कवि हो मुझ पर कोई गीत लिखो
नदी किनारे गया मुझे लहरों ने टोका
क्या इस ओर देखने को मिलता है मौका
फंसा जाल का मीन मरण कहता मुझसे।
तुम तो कवि.....
नया युवा आक्रोश जोश में आज हुंकरित
हर प्रातः के साथ समस्या नयी अंकुरित
तोड़-फोड़ का ताण्डव-नर्तन कहता मुझसे।
तुम तो कवि.....
आँखें पथरा गईं हृदय सब प्रस्तरवत है
मार काट के बीच सहजता की आदत है
काश्मीर का बम वर्षण कहता मुझसे।
तुम तो कवि.....
रोज नयी सरकार कुर्सियाँ गढ़ती जातीं
संतानों के सदृश फाइलें बढ़ती जातीं
भारत का परिवार नियोजन कहता मुझसे।
तुम तो कवि.....
श्रीमती जी इधर सम्हाल रही आलय को
उधर चलाता अफसर मूड कार्यालय को
कर्मचारियों का चमचापन कहता मुझसे।
तुम तो कवि हो मुझ पर कोई गीत लिखो।

ys[k

Hkxoku e vuU; i e gh HkfDr g

vkb-Mh- [k=h

भक्ति के बारे में भिन्न–भिन्न मत प्राप्त होते हैं। भगवान की सेवा को भक्ति कहा गया है– महर्षि शाण्डिल्य ने कहा है– *"सा परानुशक्तिरीश्वरे"* अर्थात् ईश्वर में परम अनुराग अर्थात परम प्रेम ही भक्ति है।

देवर्षि नारद ने भक्ति सूत्र में कहा है– *"सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा"*। उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। *"अमृतरूपा च"* और वह अमृतरूप है।

इन वचनों से ज्ञात होता है ईश्वर में जो परमप्रेम है, वही अमृत है, वही मूल भक्ति है। प्रेम सेवा का परिणाम है और भक्ति के साधन की अंतिम सीमा है। उदाहरण स्वरूप वृक्ष की पूर्णता और गौरव फल आने पर ही है। इसी प्रकार भक्ति की पूर्णता और गौरव भगवान में परम प्रेम होने में ही है। प्रेम ही उसकी पराकाष्ठा है और प्रेम के ही लिये सेवा की जाती है।

भगवान के अस्तित्व के बारे में जब हम जाग्रत हो जाते हैं तो हममें परिवर्तन स्वाभाविक हो जाता है। परम प्रेम के सात लक्षण बताये गये हैं –

पहला लक्षण– परम प्रेम कभी घटता नहीं है। प्रतिक्षण बढ़ता है। "प्रतिक्षणं वर्धमानै।" जो प्रेम घटता हो वह लौकिक प्रेम होता है।

दूसरा लक्षण– भगवान के प्रति हमारे मन में प्रेम है तो उसके प्रति कभी भी उदासीनता का भाव नहीं आता। प्रेम में रूखापन– सूखापन नहीं होता। सदैव प्रेम में रस होता है।

तीसरा लक्षण– प्रेम जब परिपूर्ण होता है तो उसमें आनंद आता है। गम्भीरता या बोझिलता नहीं होती। हम यह नहीं कह सकते कि हम गंभीर होकर प्रेम कर रहे हैं। जिस प्रेम में छेड़खानी, मजाक नहीं होते वह प्रेम नहीं है।

चौथा लक्षण– प्रेम का रस कभी बासा नहीं होता। जिसमें तृप्ति होती है वह प्रेम नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं– जो राम नाम लेकर तृप्त हो गया है उसने राम नाम लिया ही नहीं है। जो प्रभु अनन्त है उसके प्रति जो प्रेम है, उसमें कभी तृप्ति नहीं होती।

पांचवा लक्षण– प्रेम में व्यक्ति के जीवन में कभी डर नहीं आता। प्रेम ही हमको भय से मुक्त करता है। जो प्रेम के चक्कर में डरते हैं वह प्रेम जागतिक प्रेम है। भगवान के प्रति प्रेम में डर नहीं होता।

छठा लक्षण– भगवान के बारे में यदि कोई दोष बताये या निन्दा करे तो उसे सही नहीं मान कर कहते हैं– शुद्ध प्रेम! उदाहरण स्वरूप जैसे किसी स्त्री का पति दारू पीता है, तब भी वह स्त्री पुरुष की सेवा करती रहती है।

सातवाँ लक्षण– प्रेम वह है जो दूरी और दूसरापन मिटा देता है। मनुष्य के ह्रदय में यदि प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम है तो जब चाहो उस समय प्रभु आपके ह्रदय में प्रगट होंगे।

इस तरह सात लक्षणों से पूर्ण जो प्रेम है वह अनन्य प्रेम का रूप है। इसी प्रेम के संबंध में देवऋषि नारद कहते हैं – "यही प्रेम अमृत रूपा है।"

एच.आई.जी 5–ए, गणपति इन्क्लेव, कोलार रोड, भोपाल

lekpkj i= i=h;u ¼dUæh;½ dkuu 1956 d vrxr

^rqylh ekul Hkkjrh*

d Lokfeo rFkk vU; ckrk d l c/k e fooj.k

1. प्रकाशन स्थान	:	*भोपाल मध्यप्रदेश*
2. प्रकाशन अवधि	:	*मासिक*
3. मुद्रक का नाम	:	*इति निगम*
(क्या आप भारतीय हैं)	:	*हाँ*
4. पता	:	*कृषिशोध प्रकाशन, 18–सी, नारायण नगर, होशंगाबाद रोड़, भोपाल*
5. प्रकाशक का नाम	:	*श्रीरमाकांत दुबे*
(क्या आप भारतीय हैं)	:	*हाँ*
6.संपादक का नाम	:	*श्री एन.एल. खण्डेलवाल*
पता	:	*तुलसी मानस प्रतिष्ठान, मध्यप्रदेश मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल–02*
7. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हों	:	*तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल–02 (मध्यप्रदेश)*

मैं, रमाकांत दुबे, एतदद्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य हैं।

jekdkr nc

प्रकाशक

ys[k

eku l dh ikp okfVdk,

jkexkiky uek

श्रीरामचरित मानस में मुख्य रूप से पाँच वाटिकाओं का वर्णन आता है। (1) अयोध्या की अमराई (2) जनकपुर की पुष्प वाटिका (3) स्वयंप्रभा की वाटिका (4) किष्किंधा का मधुवन (5) अशोक वाटिका

इन वाटिकाओं का थोड़ा क्रम भंग करके वर्णन किया जा रहा है –

(1) आइए, पहली वाटिका *अयोध्या की अमराई* चलें। इस सदाबहार अमराई में प्रभु रामजी अपने भ्राताओं और सखाओं के साथ खेला करते थे। शीतल बहार का आनंद लेते थे। अमराई के साथ, अनेक वन–बाग भी थे किन्तु यही वन–बाग दशरथजी के स्वर्गारोहण के बाद मुरझा गये। मानस में आया है–

श्रीहत सरसरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा।। 2/158/6

इनमें सजीवता आई, जब श्रीराम जी लंका से वापिस आये तब–

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।। 7/3/9

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।। 7/23/1

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्त्रवहीं।। 7/23/5

सुमन बाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई।। 7/28/1

अयोध्या में अमराई के साथ घर–घर में वाटिका लगाई गई, जिनमें बहुत जातियों के सुन्दर और ललित लताएं सदा बसंत की तरह फूलती रहती हैं। पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए वृक्षारोपण और वाटिकाओं की महती आवश्यकता है।

(2) जब वानर–भालू सीताजी की खोज करने जा रहे थे तब–

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने।।

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना।। 4/24/3–4

हनुमानजी ने ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वी के अन्दर एक गुफा में उन्हें एक कौतुक दिखाई दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे थे और बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे थे। हनुमान सब को साथ लेकर वहां गये और देखा–

दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कुंज।

मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तपपुंज।।

4/24

वहाँ वाटिका के साथ तालाब भी देखा। वहाँ एक मंदिर में एक तपोमूर्ति स्त्री (स्वयंप्रभा) को भी देखा। दूर से सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना सारा वृतान्त कह सुनाया। उसकी आज्ञा पाकर सबने जलपान किया, फल खाये। इसके बाद स्वयंप्रभा ने भी अपनी कथा सुनायी। अपने तप के माध्यम से उसने सभी वानरों से समुद्र के किनारे तक पहुंचाने में सहायता की। वह स्वयं रामजी के पास गई। उनके चरण कमलों में मस्तक नवाकर अचल भक्ति को प्राप्त हुईं।

3) आइए अब हम *मधुवन* का आनंद लें। हनुमान जी लंका को जलाकर, सीताजी की खोज करके, उन्हें धीरज देकर समुद्र के पार अपने साथियों के पास आये–

नाघि सिंधु एहि पारहि आवा।
सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा।।

5/2/28

चले हरषि रघुनायक पासा।
पूँछत कहत नवल इतिहासा।।

5/28/6

सभी हर्षित होकर श्री रघुनाथ जी के पास चले। रास्ते में सुग्रीव की वाटिका मधुवन में प्रवेश किया–

तब मधुवन भीतर सब आए।
अंगद संमत मधुफल खाये।।

5/28/7

मानस हमें शिक्षा देती है कि बिना पूछे किसी के बाग–बगीचे से फल–फूल नहीं तोड़ना चाहिए। पूछकर लेना सभ्यता और नीति का पालन जनाता है। हमने एक वाटिका में एक तख्ती में लिखा देखा– "फूल चोर सावधान, भगवान देख रहा है।" ऐसा अवसर न आवे, हमें ध्यान देना चाहिए।

मधुवन के उजाड़ने की खबर जब रखवालों ने सुग्रीव को सुनाई कि युवराज सहित सभी वानरों ने वाटिका उजाड़ दी, तो यह सुनकर सुग्रीव जी हर्षित हुए। मानस में आया है–

जाइ पुकारे ते सब वन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज।।

5/28

इस मधुवन वाटिका में ज्ञान स्नान करने से कार्य में सफलता मिलती है।

4) *अशोक वाटिका* – लंका की इस वाटिका का नाम यद्यपि अशोक वाटिका है लेकिन यह तो शोक की वाटिका है। रावण माता सीता का हरण करके–

एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ।
बन अशोक महँ राखत भयऊ।।

3/29/26

अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे ही सीताजी को बैठाया गया तो *"सीता बैठि सोच रत रहई।"* वे वहाँ सशोक हैं वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में उल्लेख है कि अशोक वाटिका रावण के अन्तःपुर में ही किसी कोने में स्थित थी। पद्म–पुराण में आया है कि रावण सीताजी को अशोक वाटिका में रखकर अपने महल में यह इच्छा लेकर गया कि मुझे राम के बाण से मरना है।

इस पराई वाटिका में भी माँ सीताजी ने अपने पातिव्रत धर्म का पालन किया। रावण ने तो बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाई। मानस में आया है–

"हारि परा खल बहु बिधि भय और प्रीति देखाई।
तब अशोक पादप तर राखिसि जतन कराइ।।"

3/29

हमारी बेटियों को भी आत्म रक्षा में सदैव तत्पर रहना चाहिए।

5) *पुष्प वाटिका* – मानस की इन वाटिकाओं का क्रम भंग करके अब आपको रसरंग की सुखद वाटिका की ओर ले जाना चाहते हैं। यह ऐसी

वाटिका है जिसमें ब्रह्म राम एवं पराम्बा माँ सीताजी विहार करते हैं।

गुरु विश्वामित्र जी की पूजा का समय जानकर प्रभु राम–

समय जानि गुर आयसु पाई।
लेन प्रसून चले दोउ भाई।।

1/227/2

इस वाटिका को देखकर–

बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत।।

1/227

यह वाटिका जगत् को सुख देने वाले रामजी को सुख दे रही है। इसी बीच–

तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरिजा पूजन जननि पठाई।।

1/228/2

सीताजी की माता सुनयनाजी ने उन्हें गिरिजा (गौरीजी) की पूजा करने के लिए भेजा। सीताजी ने–

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग बरु मागा।।

1/228/6

इस वाटिका में जब रामजी और सीताजी का मिलन होता है तब उनकी प्रीति, सुन्दरता और मंगलदायक स्थिति अवर्णनीय है। सीताजी को देखकर रामजी लक्ष्मणजी से कहते हैं–

तात जनक तनया यह सोई।
धनुष जग्य जेहि कारन होई।।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा।
सहज पुनीत मोर मनु छोभा।।

इस पुष्प वाटिका प्रसंग में लक्ष्मण जी मर्यादित रहकर मौन रहे। रामजी का दर्शन कर सीताजी ने पुनः गिरिजाजी के मंदिर में जाकर प्रार्थना की–

मोर मनोरथ जानहुँ नीके।
बसहु सदा उर पुर सबहीं के।।

1/236/3

माँ गिरिजाजी ने वरदान दिया–

सुनु सिय सत्य असीस हमारी।
पूजिहि मन कामना तुम्हारी।।

1/236/7

विश्वामित्र जी के पास जब रामजी फूल–फल लेकर गये तब इन्होंने आशीर्वाद दिया–

सुफल मनोरथ होहँ तुम्हारे।
रामु लखनु सुनि भए सुखारे।।

1/237/4

पुष्प वाटिका प्रसंग के पठन–पाठन से हमारी भी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसा हमारा विश्वास है।

सिंहपुर, नरसिंहपुर (म.प्र.) 487110 मो.: 9685770857

ys[k

Jkhjke dFkk d vYi Kkkr nyHk i l x

y{e.k thu cpiu e ij'kjke d /ku"k dc d l rkM \

Mk- ujUn d ekj egrk

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई।।
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।
सो बिलगाइ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा।।
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने।।
बहु धनुही तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू।।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड 271/2 से 4

ये चौपाइयाँ श्रीराम–लक्ष्मण परशुराम संवाद के रूप में श्रीरामचरितमानस में श्रीराम के शिवधनुष भंग के समय की हैं। इनमें अंतिम चौपाई में अत्यन्त ही गूढ़ अर्थ और अन्तर्कथा छिपी हुई है। श्रीराम को परशुरामजी सम्बोधन कर कहते हैं कि सेवक वह होता है जो सेवा का काम करे। शत्रु का काम तो लड़ाई लड़ना ही है। हे राम! सुनो, जिसने भी शिवजी के धनुष को तोड़ा (भंग किया) है, वह मेरा सहस्रबाहु के समान शत्रु है।

जिसने भी यह धनुषभंग किया है वह इस समाज (राजा–महाराजाओं) को छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सभी राजा मारे जायेंगे। मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुसकाये और परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले– हे गोसाई! लड़कपन (बचपन) में हमने बहुत सी धनुहियाँ तोड़ डालीं। किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर इतनी ममता किस कारण से ?यह सुनकर भृगुवंश ध्वजास्वरूप परशुरामजी क्रोधित हो गये तथा कहा अरे राजपुत्र! काल के वश होने से तुझे बोलने में कुछ भी होश नहीं है। सारे संसार में प्रसिद्ध शिवजी का यह धनुष क्या धनुही (सामान्य धनुष) के समान है ?

अब यहाँ लक्ष्मणजी ने परशुरामजी से बचपन में बहुत धनुष तोड़ने की बात की है तो, लक्ष्मणजी ने परशुरामजी के धनुष कब कैसे तोड़े ?इतना ही नहीं लक्ष्मणजी के बचपन में धनुष तोड़ने पर परशुरामजी ने इतना क्रोध क्यों नहीं किया ?साथ ही साथ लक्ष्मणजी उनके क्रोध को कम करने के स्थान पर बढ़ाने के लिये उनसे ही प्रश्न पूछते हैं कि आखिर इस शिवधनुष पर आपकी इतनी ममता क्यों है ?इन सब

प्रश्नों के उत्तर हेतु इस कथा प्रसंग को जानना जरूरी है। यही कथा परशुराम जी के क्रोध का शमन करने तथा लक्ष्मणजी के अवतार को उन्हें समझाने हेतु संकेत थी।

पूर्व की कथा इस प्रकार है परशुरामजी ने पृथ्वी निःक्षत्रिय करके तमाम राजाओं को पराजित कर उनके धनुष अपने स्थान (आश्रम) में लाकर इकट्ठे कर लिये तथा अनेक देवताओं के धनुष भी संग्रह किये। उनके इस इकट्ठे किये गये धनुषों के बोझ से पृथ्वी और शेषजी व्याकुल हो गये। तब पृथ्वी स्त्री और शेषजी बालक का शरीर धारणकर परशुरामजी के पास आये, उन्होंने यह भी विचार किया था कि यदि ये धनुष कभी भी राक्षसों के हाथ लग गये तो महा अनर्थ होगा। इसके पश्चात् पृथ्वी परशुरामजी से बोली महाराज! यह मेरा बालक और मैं बहुत दुःखी हूँ, क्योंकि आज दिन तक भोजन भी नहीं मिलता रहता है। इसलिये मैं चाहती हूँ कि आपके आश्रम में रहकर आप सबकी सेवा–शुश्रूषा किया करूँगी। कई उदार ऋषि–मुनियों ने मुझे इसलिये नहीं रक्खा क्योंकि मेरा यह पुत्र बड़ा ही चंचल एवं नटखट है। यह अनेक प्रकार की रोज तोड़–फोड़ करता रहता है। यदि आप इसके कुछ भी बिगाड़ करने पर भी क्रोधिक न हों तो मैं आपके आश्रम में रहने को तैयार हूँ। परशुरामजी ने कहा– "तुम चिन्ता मत करो तथा यहां आश्रम में प्रसन्नतापूर्वक रह सकती हो। मैं तुम्हारे इस बालक के अपराध क्षमा करूँगा।" इतनी बात परशुरामजी की सुनकर दोनों इस आश्रम में रहने लगे।

एक दिन परशुरामजी कहीं गये थे तब बालक रूप शेषजी ने आश्रम में रखे सब धनुष तोड़ डाले। उनके टूटने की आवाज सुनते ही परशुरामजी विस्मित हो गये और धनुषों के टूटने पर भी क्रोध नहीं किया। किन्तु इतना अवश्य कहा कि अब तुम दोनों यहाँ से चले जाओ तथा आशीष भी दिया। उसी समय शेषजी ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और कहा कि एक मात्र शिवजी का धनुष ही शेष रह गया है। जिसको श्रीरामचन्द्रजी तोड़ेंगे (भंग करेंगे) तब फिर आपसे मिलकर वार्ता होगी। इतना कहने के पश्चात् वह स्त्री तथा बालक अपने–अपने वास्तविक रूप में मिल गये। बस वही बात लक्ष्मणजी परशुरामजी को बालकपन में बहुत धनुष तोड़े कहकर स्मरण कराना चाहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ –

1. पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र– रामायण
2. मानसपीयूष बालकाण्ड
3. श्रीरामचरितमानस
4. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण

सीनि. एम.आई.जी.– 103, व्यासनगर, ऋषिनगर, विस्तार उज्जैन, (म.प्र.) 456010

dfork

djr Hko l ikj

fo'oukFk 'kek ^foey*

दिन में सूर्य रात में चन्दा करते नित्य प्रकाश।
फिर भी मानव सोचा करते होकर बड़े निराश।।

प्राण दायनी वायु बहती शीतल मंद जहाँन।
पावक पालन करती सबका करती प्रान प्रदान।।
धरती ऊपर भार लादती खाद्य पदारथ देती।
जंगल मंगल करते जग का हरियाली सुख देती।।

जल को ऊपर नीचे रखकर हरदम प्यास बुझाती।
जल, थल, नभचर सब प्राणिन को सेती और सुलाती।।
फल फूलों से लदे विटप सब मन को सदा लुभाते।
कितने हितकारी हैं जंगल निज सर्वस्व लुटाते।।

नभ के नीचे सभी बसे हैं रहती सब पे छाया।
पर मानव ने उस ईश्वर को अब तक समझ न पाया।।
जिसने सूर्य, चन्द्र और तारे जल धरती बिखराया।
पावक वायु पंचतत्व से तन को रुचिर बनाया।।

फिर क्यों मानव बना हुआ है ईश्वर से अनजान।
हे कृतघ्न जन्म से मानव वह भूला भगवान।।
करो वंदना उस ईश्वर की जिसने जन्म दिया है।
सभी तत्व उपलब्ध कराकर जग उपकार किया है।।

वह साकार निराकार भी व्यापक है आकार।
सच मानो तो उसके ही है ईश अंश साकार।।
उठो सबेरे करो वंदना जो जग के आधार।
जीवन मरण उन्हीं के कर में करते भव से पार।।

120, महाबली नगर, कोलार रोड, भोपाल मो.: 9981722188

ys[k

thu dh dyk

NkVyky ilkn [kjokj

शरीर अनेक व्याधियों का घर है। शरीर ही सबसे बड़ी व्याधि है। आत्मा में स्थित हुआ योगी केवल आत्मा के आनन्द की ही अनुभूति करता है, जो शरीर, मन एवं वाणी के दुखों से प्रभावित नहीं होता। आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। आत्मा अकर्ता है उसका कर्म और कर्मफल से संबंध नहीं है। कर्मों का संबंध शरीर, मन एवं अहंकार तक सीमित है। अहंकारवश किया गया हर कर्म अपना फल देता है और बंधनस्वरूप है। कर्म करने और उसे छोड़ने की वासना का परित्याग सुख प्रदान करता है। जहां 'मैं' नहीं है, जहां कर्म के पीछे उद्देश्य फलाकांक्षा नहीं है, वही निष्कर्म हैं। कर्म छोड़ना ईश्वरीय कार्य में बाधा पहुंचाना है। कर्म करो किन्तु उसे ईश्वरीय कार्य समझकर करो। कर्तापन से मुक्त, निमित्त मात्र बन जाओ। कर्ता केवल परमात्मा है। सब उसके नियम से चल रहा है। मांगना संसार है, नहीं मांगना साधना है।

परम पूजा – माता की सेवा से इस लोक को, पिता की सेवा से परलोक को और नियमपूर्वक गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक को भी लांघ जाओगे। इन तीनों की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये। इनको भोजन कराने के पहले भोजन न करना, इन पर कोई दोषारोपण न करना और सदा इनकी सेवा में संलग्न रहना यही सबसे उत्तम पुण्यकर्म है। जिसने इन तीनों का आदर कर लिया उनके द्वारा संपूर्ण लोगों का आदर हो गया और जिसने इनका अनादर किया उसके संपूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो गये। मनुष्य जिस कर्म से पिता को प्रसन्न करता है उसी के द्वारा प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं तथा जिस बर्ताव से वह माता को प्रसन्न कर लेता है उसी के द्वारा समूची पृथ्वी की पूजा हो जाती है। जिस कर्म से शिष्य गुरु को प्रसन्न करता है उसी के द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा संपन्न हो जाती है।

माता–पिता और गुरु की बात को बिना संदेह और बिना विचार किए शुभ समझकर तुरन्त मान लेना चाहिए। माता–पिता के चरणों में ही स्वर्ग की कल्पना की जा सकती है क्योंकि अपने पुत्र–पुत्रियों के लिए वे जो भी आशीर्वाद देते हैं वह उनकी अन्तरात्मा की आवाज होती है जो कभी व्यर्थ नहीं जाती। माता–पिता को सर्वोपरि मानने के कारण श्री गणेश समस्त देवताओं में प्रथम पूज्य हैं।

कुल वृद्ध वटवृक्ष की तरह होता है, जिसकी स्निग्ध छाया में परिवार या समाज के लोग जीवन की थकान मिटाते और विश्राम करते हैं, साथ ही उस वटवृक्ष के वरदहस्त को अपने ऊपर अनुभव करके निर्भय जीवन जीते हैं। वृद्ध व्यक्ति स्वयं कितना भी दुखी क्यों न हो, परन्तु परिवार के लिए उसके मुख से निरन्तर उपकार और सुख की कामना ही मुखरित होती है।

यह सदैव ध्यान रहे कि तुम जैसा व्यवहार अपने माता–पिता के साथ करोगे, वैसा ही व्यवहार तुम्हारे बच्चे तुम्हारे साथ करेंगे। यह अटल सत्य है, इसे कोई नहीं टाल सकता। जो अपने बड़ों का सम्मान करते हैं, उन पर भगवान सदैव प्रसन्न रहते हैं। वृद्धावस्था जीवन का अंत नहीं, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टियों से सम्मुन्नत जीवन का प्रवेश द्वार मानिए। वृद्ध जवानों की अपेक्षा शारीरिक शक्ति को छोड़कर हर प्रकार से बढ़ा हुआ होता है। अतः बुढ़ापे का डर मन से निकाल दीजिए। ध्यान और एकाग्रता के अभ्यास द्वारा मनोबल की वृद्धि करते रहिए। ध्यान और अभ्यास करने से मानसिक संतुलन बना रहता है। इसके लिए दीर्घकालीन सतत अभ्यास की आवश्यकता है।

पत्नी, पुत्र, संबंधियों, मित्रों, धन–संपत्ति तथा संसार की अन्य समस्त वस्तुओं के प्रति अपने प्रेम को एक जगह संघटित करके ईश्वर की ओर दिशान्तरित कीजिए। सरल एवं प्राकृतिक जीवन बिताइये। सदा आध्यात्मिक साधना एवं भजन करते रहिए। एक मिनट भी व्यर्थ न खोइए। यदि आप ऐसा करेंगे तो भगवान अवश्य ही आपको प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्रदान करेंगे।

वृद्ध के लिए जीवन जीने की कला

अपना पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने समर्थ पुत्रों को देकर निश्चिन्त हो जाना। वे जो कहते हैं, कर देना, जो खिलाते हैं, खा लेना और अपने पौत्र–पौत्रियों के साथ हँसते–खेलते रहना। बच्चे कुछ भूल करते हैं, उस समय चुप रहना। उनके किसी कार्य में बाधक नहीं बनना। जब कभी वे परामर्श लेने आते हैं, तो अपने जीवन के अनुभवों को उनके सामने रख देना। वे सलाह पर कितना अमल करते हैं यह नहीं देखना। यह आग्रह भी नहीं करना कि वे तुम्हारे निर्देशों पर चलें। यदि फिर भी भूल करते हैं तो चिन्तित नहीं होना। हाँ, यदि वे पुनः सलाह लेने के लिए पास आते हैं तो नाराज न होकर उनको सलाह देकर विदा करना।

आज का वातावरण ऐसा है कि जिन लोगों पर हमें अटूट विश्वास रहता है, वे ही अपना रंग बदलकर हमारे विरोधी हो जाते हैं। जिनसे हम सम्मान, सत्कार और आदर की अपेक्षा करते हैं वे ही बीच चौराहे पर खड़े होकर हमें नग्न करने के लिए उतारू हो जाते हैं, जिसके कारण हम उद्विग्न होकर मन को अशान्त और निराशामय बना लेते हैं, किन्तु यदि आध्यात्मिक दृष्टि से विचार किया जाये तो जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसके लिए हम किसी दूसरे व्यक्ति को दोष नहीं दें। भले ही कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमारी विषम परिस्थिति के लिए उत्तरदायी क्यों न प्रतीत हो रहा हो, परन्तु वह हमारे दुख का मूल कारण कदापि नहीं है। हमें समझना होगा कि वह केवल परिस्थिति को प्रकट करने वाला एक माध्यम है।

ईश्वरीय विधान के अनुसार हमें ऐसा कुछ नहीं प्राप्त होता, जिसके अधिकारी अथवा पात्र हम नहीं हैं। कर्म सिद्धान्त अकाट्य और सुनिश्चित है। अर्थात मनुष्य को प्रारब्ध के रूप में जो सुख–दुख, अच्छी–बुरी परिस्थिति हानि–लाभ प्राप्त होता है वह हमारे अपने ही पूर्वजन्म या इस जन्म में किए हुए अच्छे–बुरे कर्मों का फल है। पूर्व जन्म में हमारा कई जीवात्माओं से संबंध रहा है। उनके साथ हमारा ऋण अनुबंध है, लेन–देन का संबंध है, जिसे

हमें इस जीवन में चुकता करना है। इस प्रकार प्रत्येक परिस्थिति का मूल कारण हम ही हैं। कोई किसी को सुख–दुख देने वाला नहीं है। सभी अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं। यही परम सत्य है। जो हो रहा है उस पर चिन्ता करना व्यर्थ है। प्रारब्ध को सहन करना ही हमारी नियति है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। इसलिए विश्वास करें कि जो परिस्थिति वर्तमान में है वह सदैव नहीं रहेगी। जगत और जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं है। अतः आशा रखें कि प्रतिकूल परिस्थिति का समय आने पर अन्त अवश्य होगा। यदि वर्तमान में सुख है तो उस पर अभिमान न करें। क्योंकि परिस्थिति कभी भी विपरीत हो सकती है और यदि दुख का समय चल रहा है तो धैर्य धारण कर उसका सामना करें। क्योंकि इसके बाद सुख का नंबर है। यदि हर संभव प्रयास करने पर भी परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है तो बुद्धिमानी से, धैर्य रखते हुए तपस्या मानकर उसका सामना करना ही सर्वोत्तम उपाय है। इसे ईश्वर की इच्छा समझकर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। ईश्वर न किसी से राग करता है न किसी से द्वेष। वह तो केवल दया और न्याय करता है। यदि हमें ऐसा विश्वास हो जाये तो कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति हमें विचलित नहीं कर पायेगी।

संसार में जीवन–यापन की कला

सदैव परमात्मा का स्मरण रहे, अपने कार्यों पर निगरानी रखें, दुर्गुण, विकार, दोष आदि बाहरी शत्रु पर विजय पाने तथा सत्संग, जप, सद्गुरु–शरण आदि आन्तरिक शक्ति के विकास का अभ्यास करते रहें। संसार में रहते हुए भी एकांत भाव रखें। दीर्घ जीवन के लिए संतुलित आहार, उपवास, उचित समय पर उचित काल तक नींद लेना आवश्यक है।

कामना के त्याग से ब्रह्ममय स्थिति प्राप्त हो जाती है। संसार शरीर के उपयोग के लिए बना है, उपभोग के लिए नहीं। पूर्णता और आनन्द केवल प्रभु से ही प्राप्त हो सकते हैं। शरीर जड़ है और उसके अन्दर स्थित आत्मा चेतन है। उसकी चेतनता केवल ईश्वर से ही प्राप्त होती है। सुख और दुख मन की स्थिति का नाम है। दिव्य और दुर्लभ भक्ति में लीन रहने के बाद भगवान से सांसारिक वस्तु की कामना करना अनुचित है। ऐसी स्थिति में ऐसा लगता है कि भक्त को भगवान से अधिक संसार में विश्वास है और अभी वह संसार से उपराम नहीं हुआ। सांसारिक माया में न कोई उन्मुक्तता है और न ही कोई विश्वास। भगवान और महात्मा जगत में आदर्श स्थापित करने के लिए आते हैं। जो सब में भगवान को देखे वह प्रथम तथा जो किसी विशेष में भगवान को देखे वह द्वितीय श्रेणी का भक्त है।

ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाला व्यक्ति अपने जीवन को सफल बनाने में तथा अपना मानसिक बल बढ़ाने में बहुत ही कामयाब होता है। वह अपनी उन्नति या पतन पर विचार करने का मौका पाता है। यह नियम दूसरे सब नियमों को पालन करने की शक्ति प्रदान करता है। जो व्यक्ति अपने आपको समय पर जागने का निर्देश करता है, वह उस समय अवश्य जग जाता है। हमारा अव्यक्त मन उस निर्देश को पकड़े रहता है और समय आने पर एक नौकर का काम करता है। इस अव्यक्त मन पर भरोसा करने से ही संसार में सफलता मिलती है।

आँख बन्द रखने से हमारे शरीर की ऊर्जा अंदर ही स्टोर रहती है। जितना ज्यादा हम देखते हैं उतनी ही ऊर्जा खर्च होती है। इसी प्रकार ज्यादा बोलने से अधिक ऊर्जा खर्च होती है। अतः आवश्यक हो तभी आँख खोलनी चाहिए और जितना हो सके कम बोलना चाहिए। अगर तुम

गहन साधना, ध्यान और ज्ञान से कम का निग्रह कर लो तो जाग्रत अवस्था में भी शांति और आनन्द को प्राप्त कर लोगे। तुम परमात्मा से एकाकार हो जाओगे जो जीवन का परम लक्ष्य है। सतर्क रहो और मनोयोग से साधना करो।

यदि तुम ध्यान के महत्व को स्वीकार करते हो तो प्रतिदिन कम से कम आधा घण्टा समय आपको ध्यानाभ्यास के लिए देना चाहिए। ध्यान हमारी अनुभूति की गुणवत्ता में रूपान्तरण ला सकता है। परिवार में कोई दुखद प्रसंग आने पर ध्यान द्वारा उसकी पीड़ा को कम किया जा सकता है। सारी दुनिया जिसकी गहराई में उतरने के लिए लालायित है वह है ध्यान।

सत्संग, आत्म–विचार, जप, ध्यान और स्वाध्याय द्वारा अपने मन को स्थिर करो। अपनी समस्त इच्छाओं को और ममता एवं अहंकार के सभी भावों को त्याग दो तभी तुम्हें शांति मिलेगी। भावनाओं की शक्ति, भावनाओं का महत्व निश्चित रूप से हर योग से अलग होता है लेकिन इस भावना को व्यवस्थित करना, दिशा देना भी जरूरी होता है। अगर हम अपना समय आत्म विश्लेषण, आत्म चिन्तन, सेवा, सहयोग आदि में व्यतीत करें तो हमारे द्वारा समाज का कल्याण एवं उद्धार हो सकता है।

कार्यालय से जब घर लौटते हैं तब सबसे पहले अपने कमरे में जाकर पन्द्रह मिनट शवासन में लेट जाइए और योग निद्रा का अभ्यास करके अपने आपको तनाव मुक्त बना लीजिए। रात को सोने से पहले दस मिनट के लिए ध्यान का अभ्यास कर लीजिए।

अच्छे स्वास्थ्य के दो लक्षण बताये गये हैं। अच्छी नींद आना और भोजन अच्छे ढंग से पचना। यदि ऐसा है तो निर्भीक रहो।

आहार का भी एक नियम होता है। उसके उल्लंघन से अस्वस्थता होती है। अनुचित आहार के कारण जब हमारे शरीर में प्राण की कमी हो जाती है तब शरीर निर्बल हो जाता है। हितकारी आहार और विहार का सेवन करने वाला, विचारपूर्वक काम करने वाला, काम–क्रोधादि विषयों में आसक्त न रहने वाला, सत्य बोलने में तत्पर रहने वाला, सहनशील और आप्त पुरुषों की सेवा करने वाला मनुष्य रोग रहित रहता है। सुख देने वाली मति, सुखकारक वचन और सुख कारक कर्म, अपने अधीन मन तथा शुद्ध पाप रहित बुद्धि जिसके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने ओर योग सिद्ध करने में तत्पर रहता है उसे शारीरिक और मानसिक कोई भी रोग नहीं होते। (चरक संहिता)

हमें बीमारी और आपत्तिकाल के अतिरिक्त नौकर–चाकर, स्त्री–पुत्र और शिष्य आदि के रहते हुए भी अपने शरीर का काम जहाँ तक हो सके स्वयं ही करने का अभ्यास डालना चाहिए जिससे कि हमें दूसरे के अधीन होकर जीना न पड़े। कल्याणकारी पुरुषों के लिए दूसरों के आश्रित होकर जीना लज्जास्पद है। थोड़ी देर का कुसंग भी मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक है। मनुष्य जिन–जिन बातों अथवा आचरण को बुरा समझता है, यदि उनका त्याग करता चला जाये, उसका उद्धार हो जायेगा, इसमें जरा भी शंका नहीं है।

एच–1, शिरड़ीपुरम्, कोलार रोड़, भोपाल

ys[k

Hky cuk] Hkyk djk

xxk/kj ck/kk

गाँव के कुछ व्यक्ति रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे थे। उनमें एक सरपंच भी थे। वे खिन्न स्वर में कह रहे थे, "जमाना बहुत खराब चल रहा है। जहाँ देखो वहां झूठ, कपट और चरित्रहीनता का बोल बाला है। बच्चे मां–बाप की नहीं सुनते, विद्यार्थी शिक्षक को नहीं मानते और कर्मचारी अफसरों की आज्ञा का पालन नहीं करते। इस युग का तो भगवान ही रखवाला है।"

सरपंच की बात सुनकर एक वृद्ध ने कहा, "यह सब नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण है। बचपन में मां बाप शिक्षा नहीं देते और स्कूलों में अध्यापक नैतिकता नहीं सिखाते। ऐसी हालत में बच्चों को दोषी ठहराना उचित नहीं।"

"बच्चा कान से सुनकर नहीं आंख से देखकर सीखता है। शिक्षाएं तो बच्चों को हरेक दे देता है लेकिन स्वयं का आचरण कैसा है ?जो बात हम स्वयं नहीं करते वह बच्चा कैसे सीखेगा। युवा–पीढ़ी अपने मनोरंजन में व्यस्त है। बूढ़े मां–बाप या सास–ससुर की सेवा तो दूर रही उनको बोझ समझकर शिष्टाचार से बात भी नहीं करते। शिक्षकों को अपने वेतन से मतलब है। बच्चे वीरों महापुरुषों की मर्यादापूर्ण जीवन गाथाएं सुनाने के बजाय सिनेमा की बातें सुनाते रहते हैं और...."।

"आप तो बच्चों की वकालत कर रहे हैं।"

"वकालत की बात नहीं, यह वास्तवकिता है।"

सामने बैठे शर्माजी बोल उठे। "बाबाजी सही फरमा रहे हैं। अगर हम लोग बच्चों की त्रुटियों को देखने के बजाय अपनी कमजोरियों पर ध्यान देकर उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें तो बच्चे तो क्या पूरा समाज सुधर जायेगा।"

"अवश्य सुधरेगा।" पास में बैठ प्रोफेसर ने कहा, "समाज व्यक्तियों से बनता है। अगर प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की चिंता करने के बजाय स्वयं को सुधारना आरंभ करे तो समस्या का निदान हो जायेगा।"

"इसीलिए तो कल अपने भाषण में नेताजी झूठ–कपट, चोरबाजारी की निन्दा कर रहे थे।" एक ग्रामीण बोला।

"लेकिन भैया!" वृद्ध बोल उठा, "आश्चर्य तो यह है कि जो झूठ, कपट चोरबाजारी, रिश्वतखोरी और चरित्रहीनता की निन्दा करते हैं उनका स्वयं का

चरित्र कैसा है ? जिस बात को वे स्वयं नहीं छोड़ रहे। उसको जनता कैसे छोड़ देगी।"

"यही तो समस्या है।" शर्माजी कहने लगे, "हर एक दूसरों को शिक्षा दे रहा है। स्वयं की ओर कोई नहीं देखता। स्वामी शिवानन्दजी महाराज कहते थे कि शिक्षा देने की बजाय स्वयं ग्रहण करो। क्योंकि भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि साधारण व्यक्ति बड़े आदमियों की नकल करता है इसलिए बड़े आदमियों को चाहिए कि वे जीवन में नैतिकता को अपनाकर अपना जीवन अनुकरणीय बनाएं।"

"बिल्कुल सही बात है।" एक किसान ने कहा। "मेरे पिताजी प्रतिदिन प्रातःकाल दादाजी के चरण छूते थे। यह देखकर मैं भी अपने पिताजी के चरण छूने लगा। लेकिन मेरे पड़ोसी सहपाठी को उसके पिता नित्य चरण छूने की महिमा पर भाषण देते थे लेकिन वह अपने पिता के चरण नहीं छूता था क्योंकि उसने अपने पिता को दादा–दादी अथवा घर में आने वाले अन्य बड़ों के चरण छूते हुए कभी नहीं देखा था।"

"भेया, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। अगर आप दूसरों को कुछ सिखाना चाहते हैं तो पहिले आप स्वयं सीखो और अनुपालन करो।"

"शराब की निन्दा करनी है तो पहिले स्वयं शराब पीना बन्द करो। बीड़ी–तम्बाकू से होने वाले नुकसान बताने हैं तो पहिले स्वयं बीड़ी पीना और तम्बाकू खाना छोड़ो, तभी सुनने वाले पर कुछ असर हो सकता है।" एक ग्रामीण ने कहा।

"ऐसा ही तो नहीं हो रहा है। आजकल पंचायत समिति, स्कूल, दफ्तर इत्यादि में "आचार संहिता" के नाम से कुछ हिदायतें छपवाकर दीवारों पर टांगी हैं। सिद्धान्त तो उनमें अच्छे लिखे हैं लेकिन जब तक कोई सरपंच या अध्यापक अथवा अफसर इनका पालन नहीं करेगा तब तक इन कागजी सिद्धान्तों से सुधार की क्या आशा की जा सकती है ?" शर्माजी ने कहा, "इसीलिए तो स्वामी शिवानन्द जी महाराज कहते हैं हजारों मन सिद्धान्तों के ज्ञान से एक छटांक भर उनका आचरण अधिक लाभप्रद है।"

"शर्माजी! यह स्वामी शिवानन्द कौन हैं ?" सरपंच ने पूछा।

"स्वामी शिवानन्दजी महाराज एक महान सन्त थे। दक्षिण भारत के भक्त शिरोमणि अप्पया दीक्षित के वंशज थे। मलाया में डॉक्टर कुप्पू स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने वहां गरीबों की बहुत सेवा की...."

"फिर डॉक्टर से सन्त कैसे बने गये ?" बात काटते हुए सरपंच ने पूछा।

"यह भी एक घटना है। कोई महात्मा भारत से मलाया धर्म प्रचार के लिए गये हुए थे। उन्होंने डॉ. कुप्पू स्वामी का ओजस्वी व्यक्तित्व और मुख पर तेज देखकर सोचा कि यह तो कोई होनहार व्यक्ति है। वे उनके अस्पताल में जाकर रोगियों के साथ बैठ गये। जब उनकी बारी आई डॉक्टर साहब ने पूछा, "महात्माजी! आपको क्या तकलीफ है ?" तो महात्माजी बोले कि "डॉक्टर साहब तकलीफ यह है कि आप बीमार हैं इसलिए आपको अपना इलाज करना चाहिए" डॉक्टर साहब मुस्कराये और कहा, "स्वामीजी महाराज! अगर आप यह बता सकते हैं कि मैं बीमार हूं तो आप उसका इलाज भी अवश्य जानते होंगे" साधु महाराज ने अपनी झोली से एक पुस्तक निकालकर उनको हाथ में देते हुए कहा "इस पुस्तक में आपकी बीमारी और उसका इलाज दोनों ही लिखे हुए हैं। आपको जब अवकाश हो तब फुर्सत में पढ़ना।" रात्रि में जब डॉक्टर साहब ने किताब का अध्ययन किया तो समझ में आया कि अज्ञान से उत्पन्न जन्म–मरण का चक्कर एक बीमारी है और आत्मसाक्षात्कार आरोग्य है। साधना और संयम से उसका इलाज हो सकता है।"

"क्षमा करना, वह पुस्तक कौनसी थी ?" किसान पूछ बैठा। "वह पुस्तक स्वामी सच्चिदानन्दजी की लिखी– "जीव–ब्रह्म ऐक्यम्" थी जिसने डॉक्टर कुप्पू स्वामी के मन में वैराग्य का बीज बो दिया। वैसे डॉक्टर साहब बचपन से ही जप, तप, ध्यान, धर्मग्रगन्थों का अध्ययन करते रहते थे, रोगियों की सेवा प्रेम से करते थे और गरीबों को दान तथा मुफ्त दवाई भी देते थे, लेकिन पुस्तक पढ़ने के बाद थोड़े ही समय में अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर, अपनी सम्पत्ति गरीबों में बांटकर मलाया से हिमालय पहुंच गये जहां एक परिव्राजक सन्त श्री स्वामी विश्वानन्दजी महाराज से दीक्षा लेकर बारह वर्ष कठोर तपस्या की ओर निरन्तर प्रभु का ध्यान करते हुए उनकी समाधि लगने लगी और समाधि में ऋषि–मुनियों के दर्शन किये तथा भगवान के भी विविध स्वरूपों का दर्शन करने के बाद उनको कण–कण में भगवान के दर्शन होने लगे। अतः उन्हे समस्त प्राणियों में भगवान की उपस्थिति का अनुभव होने लगा और वे सभी जीवों से प्रेम करते हुए उनकी सेवा व सहायता करने लगे। उनका अनुभवयुक्त ज्ञान दूसरों में बांटने के लिए उन्होंने अनेक पुस्तक–पुस्तिकायें लिखी। उनमें दी गई शिक्षाएँ उनके निजी अनुभव पर ही आधारित हैं। इसीलिए उनकी शिक्षाओं का बहुत प्रभाव होता है और देश–विदेश में अनेक भाषाओं में उनकी पुस्तकों का अनुवाद और रूपांतरण होकर प्रचार हो रहा है। उनकी शिक्षाओं का एक महत्वपूर्ण सूत्र है''–

"भले बनो भला करो।"

"बिल्कुल सत्य है। मैंने भी स्वामी शिवानन्दजी की कई पुस्तकों का अध्ययन किया है उनमें जो कुछ उन्होंने लिखा है वह सब उनके अनुभवों के आधार पर लिखा हुआ है। जीवन को दिव्य बनाने के लिए उन्होंने "भले बनो भला करो" पर ही जोर दिया है। जब तक आप स्वयं भले नहीं बनोगे तब तक दूसरों का भला नहीं कर सकोगे। अपनी समस्या का भी यही समाधान है कि हम स्वयं भले बने और दूसरों का भला करें।" प्रोफेसर ने कहा। इस पर वृद्ध बाबा ने कहा, "मैं भी तो यही कह रहा था कि अगर हम भले बनें और भलाई के कार्य करें तो हमारे बच्चे और हमारे सम्पर्क में आने वाले मित्रजन भी उसका अनुकरण करेंगे और इस प्रकार नैतिकता का प्रसार होगा और धीरे–धीरे समाज तथा देश में परिवर्तन आएगा लेकिन सरपंचजी तो समझ रहे थे कि मैं बच्चों की तरफदारी कर रहा हूँ।"

"वाह भाई वाह! मैं चला था छात्रों और समाज को सुधारने और यहाँ मुझे अपने को ही सुधारने का पाठ मिल रहा है। खैर, यह सही भी है। स्वयं को सुधारना समाज सुधार का प्रथम सोपान है।"

गाड़ी की गति धीमी हो रही थी। सरपंचजी का गांव आ गया था वे उतरने के लिए उठते हुए कहने लगे आज का पाठ हुआ "भले बनो भला करो"। इस पाठ को नहीं भूलूँगा और आशा करता हूँ कि इससे अपने जीवन को सफल बनाने और समाज में सुधार लाने में बहुत सहायता मिलेगी। अच्छा भाई राम–राम सबने मिलकर कहा– "राम–राम"।

''तेरा तुझको अर्पण'' से साभार

238 बी–3, राजापार्क, जयपुर–302004

ys[k

o) koLFkk% fo"kkn vFkok i`lkn

ik- ¼Mk-½ teukyky ck; rh

यह संसार, यह शरीर समय की मरुभूमि में मरीचिका के समान है। दुःख, अशांति और चिंता जीवन की छाया हैं। प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर प्रसन्नता में अवरोध—दुःख की तलवार सदैव लटकती रहती है। जो व्यक्ति निज ज्ञान एवं विवेक से अपनी रक्षा नहीं कर पाते, उन्हें यह सदैव व्यथित करती रहती है। व्यक्ति विवशताओं की बेड़ियों में जकड़ा रहता है। अतः यह विचार करना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है ?

उपर्युक्त बात मनुष्य के जीवन में आने वाले उतार—चढ़ाव की स्थिति की ओर संकेत करती है और ऐसा होना प्राकृतिक न्याय है। नहीं चाहते हुए भी विपरीत परिस्थितियों को स्वीकार तो करना ही पड़ता है। अपने चाहने से सब कुछ अपनी इच्छा के अनुकूल नहीं हो सकता। अतः वर्तमान में जो भी परिस्थिति आपके सामने हैं, उसका सदुपयोग करके, अपने को संतुष्ट रखना अनिवार्य है। अपने को प्रसन्न रखने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं है। कहावत है— "जैसी अवस्था, वैसी व्यवस्था"।

इस संदर्भ में वृद्धावस्था के संबंध में विचार करें, तो पाते हैं कि वृद्धावस्था सबको आती है। यह जीवन का अन्तिम एवं अनिवार्य पड़ाव है। ज्यों—ज्यों मनुष्य की आयु बढ़ती जाती है, वैसे—वैसे ही शरीर की समस्त इन्द्रियों की कार्य करने की शक्ति का ह्रास होने लगता है।

ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपने आपको पराधीन एवं अक्षम अनुभव करने लगता है। उसकी मानसिक स्थिति का संतुलन भी बिगड़ने लगता है। अपनी बाह्य एवं आंतरिक समस्याओं से घिरकर वह बेचैन होने लगता है। वृद्धावस्था को कोसता है, उस पर आंसू बहाता है।

आत्म—निरीक्षण द्वारा यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि ऐसी स्थिति का कारण क्या है ? और किस प्रकार इसका निवारण किया जा सकता है ? आप देखेंगे कि अधिकांश में तो व्यक्ति के स्वयं के दोष ही इसमें कारण बन जाते हैं। परिवार में विचारों का तालमेल एवं सामंजस्य नहीं बैठा पाने के कारण परिस्थिति और अधिक भयावह हो जाती है। अपने विचारों का आग्रह और परिवार द्वारा

उसकी अवहेलना से भयंकर दुष्परिणाम सामने आते हैं। कई व्यक्ति अपनी इस कुण्ठा से इतने ग्रसित हो जाते हैं कि परिवार से पलायन कर जाते हैं। कोई–कोई आश्रमों में सहारा ढूँढते हैं, लेकिन वहाँ भी वे अहं एवं हठ से या तो स्वयं व्यथित रहते हैं अथवा दूसरों को व्यथित करते रहते हैं। अनेक विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। यहां तक कि आर्थिक एवं मानसिक त्रासदी की विषम परिस्थितियों में कोई तो अनहोनी भी उठा लेते हैं।

यद्यपि वृद्धावस्था में शरीर का विकास रुक जाना स्वाभाविक है तथापि जीवन के अनुभवों के आधार पर मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियां इतनी पुष्ट हो जाती हैं कि व्यक्ति वृद्धावस्था में भी अपने ज्ञान, अनुभव एवं आत्मविवेचन के आधार पर शान्ति, संतोष एवं प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं। शरीर एवं संसार के प्रति अति मोह शास्त्रीय दृष्टि से भी उचित नहीं है, क्योंकि शरीर का नाश तो निश्चित है, संसार जैसा आप चाहते हैं, वैसा कभी बन नहीं सकता। आत्मा कभी न मरने वाली अविनाशी नित्य चैतन्य सनातन है– यह बात गीता में स्पष्ट रूप से कही गयी है। इस स्वीकृति के पश्चात् जीवन के प्रति निर्भय एवं निश्चिंत हो सकते हैं।

वृद्धावस्था आने पर सर्वप्रथम व्यक्ति को चाहिए कि वह अपना मानसिक संतुलन बिगड़ने नहीं दे, क्योंकि इस अवस्था में मानसिक रूप से स्वस्थ रहना अधिक आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अहं का चोला अपने ऊपर से हटाना प्रथम प्राथमिकता है, क्योंकि अहं के कारण ही वृद्धावस्था दुखद बनती है। वृद्धों के लिये संयम और परिस्थिति के अनुसार पुत्र और परिवार के सामने अपनी हार मान लेना ही क्लेश से बचने के लिये उचित है। व्यक्ति को यह भूल जाना चाहिए कि अपने यौवन काल में आप क्या थे ?कैसे थे ?

अपने अधिकार, प्रतिष्ठा, वैभव, सम्पन्नता आदि को भुलाकर वर्तमान में अन्तर्मुखी रहने का प्रयास करना चाहिए। भूतकाल की स्मृति से तो कष्ट ही अधिक होगा। अतः वर्तमान में आपको चाहिए कि परिवार के सदस्यों के आहार–विहार, व्यवहार आदि में हस्तक्षेप करके व्यर्थ में ही आलोचना के पात्र नहीं बनें। भले ही जो कुछ हो रहा है या किया जा रहा है, वह अच्छा न लगे।

वृद्धावस्था में स्वभाव तथा आदतें ऐसी बना लेनी चाहिए, जिनसे परिवार के कटु कटाक्षों से बचा जा सके। सब तरफ से अपना हस्तक्षेप बन्द कर दीजिये। आहार–विहार में अपना आग्रह मत रखिये। जब मिले, जो कुछ मिले, जैसा मिले प्रभु का प्रसाद मानकर प्रसन्नता से ग्रहण कर लीजिये। स्वाद का विचार मत कीजिये। किसी से किसी प्रकार की शिकायत मत कीजिये। अपनी आवश्यकताओं को सीमित कीजिये। अनावश्यक एवं विलासितापूर्ण इच्छाओं का त्याग कीजिये। अनुकूल–प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहने की चेष्टा कीजिये। अपनी कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त मत कीजिये। अधिक से अधिक मौन रहिये। मौन में अपार शक्ति होती है। किसी से किसी प्रकार की आशा मत रखिये, क्योंकि मिलेगा वही और उतना ही, जितना परमात्मा के विधान से मिलना है। आशा और तृष्णा ही समस्त दुःखों का मूल है, यही ध्रुव सत्य है।

संसार का यह नियम है कि यदि आप किसी के काम आयेंगे, तो कोई आपके काम आयेगा। वृद्धावस्था में अशक्त होने पर जब आप परिवार के लिये उपयोगी नहीं रहे, तब यह भूल जाना चाहिए कि आपने परिवार के लिये क्या किया था ?पुत्र, परिवार अपना दायित्व समझकर, कर्तव्य–बुद्धि से

प्रसन्नतापूर्वक यदि वृद्धों के लिये कुछ करते हैं, तो ऐसे सहयोग को अवश्य स्वीकार कीजिये। अपनी तरफ से कोई भी माँग रखना उचित नहीं है।

व्यवहार में देखा जाता है कि इन बातों को अपनाने से अवश्य ही शान्ति मिलेगी तथा पराधीनता में भी अनुकूलता का अनुभव होगा। परिवार के सदस्य भी आपकी सुख–सुविधा एवं आवश्यकता की पूर्ति का स्वतः ही ध्यान रखेंगे। वे स्वयं ही वृद्धावस्था के कष्टों के प्रति संवेदनशील हो जायेंगे। वैसे भी उपर्युक्त बातों को अपनाना तप करने के समान है, जो साधक दृष्टि से भी अत्यधिक उपयोगी है। गीता में कहा गया है कि ऐसे त्यागी साधकों का योग–क्षेम स्वयं भगवान वहन करते हैं और प्रभु के शरणागत होकर रहने पर सब प्रकार से रक्षा करते हैं।

जो लोग अर्थाभाव में जीवन–यापन कर रहे हैं, जिनके पास आय तथा उपार्जन का साधन नहीं है, उनके लिये तो विवशता के कारण उपर्युक्त बातों को अपनाना शत–प्रतिशत नितान्त अनिवार्य है। यह इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि नहीं कमाने वाले व्यक्ति पर किसी को भी खर्च करना अच्छा नहीं लगता है। आज के अर्थप्रधान युग में पैसे की प्रभुता ही सर्वोपरि है। कहा जाता है– "बाप बड़ा न भइया, सबसे बड़ा रुपैया।" यद्यपि माता–पिता अपने पाँच बच्चों का लालन–पालन, शिक्षा, भरण–पोषण अनेक प्रकार के अभावों में अपने सामर्थ्य एवं शक्ति के अनुसार स्वयं कष्ट सहकर भी करते हैं, लेकिन दुःखद स्थिति यह है कि वयस्क होने पर पाँचों पुत्रों में से कोई भी अपने माता–पिता की वृद्धावस्था में उनके उदरपूर्ति के भार को प्रसन्नता से वहन करना नहीं चाहते। उन्हें करना पड़ता है, यह उनकी विवशता है।

आज की सन्तानें माता–पिता की सम्पत्ति पर तो अपना अधिकार मानती हैं, किन्तु अपनी अर्जित आय की भनक तक नहीं पड़ने देतीं। उनके लिये थोड़ा भी खर्च करने को बोझ समझती हैं। अप्रसन्नता से खर्च करती भी हैं, तो बड़ा भारी एहसान जताती हैं। कभी–कभी तो अपने अहं के मद में शिष्टाचार की मर्यादा को तिलांजलि देकर, ऐसी बातें कह बैठती हैं, जो पीड़ा व संताप देने वाली होती है। लेकिन ऐसी स्थिति में ही संसार की वास्तविकता का ज्ञान भी होता है।

बी–186, आर.के. कालोनी, भीलवाड़ा (राज.) 311001

puko lpuk

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की कार्यकारिणी समिति के चुनाव माह जून 2019 के तृतीय सप्ताह में किये जायेंगे।

चुनाव तिथियों का पूर्ण विवरण मानस भारती के माह मई 2019 के अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

रमाकांत दुबे

ys[k

efUnjk e ekjh'kl

gjjke oktis;h

"यावत् स्थास्यन्ति गिरयः, सरितश्च महीतले
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।"

आदिकवि वाल्मीकि जी द्वारा लिखित रामायण की उक्त मंगलाशा को शत–प्रतिशत सिद्ध होते मैंने पाया भारत से सुदूर देश मारीशस में। दक्षिण के मदुराई शहर और वाराणसी में मुख्यतया दो नगर "मन्दिरों के शहर" के रूप में विख्यात हैं। मैंने प्रत्यक्ष इन दोनों का भ्रमण भी किया। आज मेरी कलम एक ऐसे देश का नाम लिख रही है जो मेरी दृष्टि में मन्दिरों का देश है और उसका नाम है मारीशस।

हिन्द महासागर–अरब महासागर के मध्य बसा यह छोटा सा देश, जिसे छोटा भारत भी कहते हैं वहां जाने का, उसे देखने का और अनुभव करने का सुखद अवसर मुझे मिला। सन्दर्भ रहा 11वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन जो 18 से 20 अगस्त 2018 को मारीशस गणराज्य की राजधानी पोर्टलुई में सम्पन्न हुआ, जिसमें मैंने प्रतिभागिता की।

मैं 17 अगस्त को वायुयान से मारीशस पहुँचा। यहाँ की आबादी लगभग 4 लाख और पूरे देश की 14 लाख मात्र है। हिन्दी भाषा, साहित्य के साथ भारतीय संस्कृति और संस्कारों का पालन करने वाला यह देश स्वच्छता, सादगी के साथ प्राकृतिक सम्पदाओं, नदियों, झरनों, छोटे–छोटे पहाड़ों और चारों ओर से सागर से घिरा अपनी सुन्दरता के लिए विश्व में प्रसिद्ध है। यही कारण है कि यहाँ लाखों की संख्या में पर्यटक प्रतिवर्ष आते हैं। मारीशस के विकास का मुख्य आधार ही पर्यटन है। मैं आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व अंग्रेज शासकों के माध्यम से बिहार और उत्तरप्रदेश प्रान्तों से भारतीयों को खेती–मजदूरी के लिए ले जाया गया था। ये भारतीय विपन्नावस्था में दास की तरह गए और ऐसे गए कि फिर वापस नहीं आ सके। ये अपने साथ ले गए थे श्री रामचरित मानस, श्रीमद्भगवत गीता, श्री हनुमान चालीसा, शिव चालीसा, दुर्गा चालीसा एवं आरतियां तथा कुछ धार्मिक साहित्य जो इन गिरमिटिया भारतीयों की अमूल्य निधि स्वरूप साथ थी और साथ ही सबसे बड़ा सम्बल भी। इन्होंने तमाम कष्ट यातनाएं सहीं पर धैर्य नहीं छोड़ा और

राष्ट्रभक्ति तथा सनातन धर्म के प्रति आस्था ने मारीशस को ही छोटा भारत और मन्दिरों का शहर बना दिया। मैं प्रणाम करता हूँ ऐसे निष्ठावान धैर्यवान भारत माता के सुपुत्रों को। जैसा मैंने मन्दिरों में मारीशस देखा, उसका संक्षिप्त उल्लेख प्रस्तुत है।

1. गंगा तालाब और गंगा आरती –

सर्वप्रथम प्राकृतिक रूप से बनी मीठे जल की झील जिसे नाम दिया है "गंगा तालाब", जो 200 फीट से अधिक गहरा है। इसके करीब 3 तरफ पक्के घाट और मन्दिर है। श्री गणेश जी की 5 फुट की खड़ी मूर्ति धोती/शालू में, शंकर जी के करीब 4 मन्दिर, दुर्गाजी, श्री हनुमान जी, श्री रामसीता लक्ष्मण, राधाकृष्ण, माँ सरस्वती तथा लक्ष्मी मन्दिर। सभी जगह व्यवस्थित पूजा–अर्चना के लिए भारतीय पंडित बेलपत्र–पुष्प–चन्दन–कुंकुंम–अगरबत्ती–यज्ञोपवीत–रुद्राक्ष और तुलसी की मालाएं एवं तुलसी लिए तत्पर। प्लास्टिक का उपयोग नहीं। ऊपर भगवान शंकर तथा शेर वाहिनी दुर्गाजी की 100 फीट से अधिक ऊँची खड़ी मूर्तियाँ। दिनांक 17 को शाम को शीतल मन्द पवन के मध्य पहले भजनों का आनन्द लिया फिर आरती– जिसे देखकर हर की पौड़ी और बनारस की यादें ताजा हो आयीं और फिर मधुर प्रसादी–भोजन....।

2. रामायण सेन्टर –

सन् 2001 में इसका शिलान्यास हुआ। भवन तैयार हो गया भारत सरकार के सहयोग से। 2015 में अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन तत्कालीन प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ के समय किया गया, जिसमें तमाम देशों के रामायण प्रेमी मर्मज्ञ– सम्मिलित हुए। अपने संदेश में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा था "रामायण मात्र एक साहित्यिक ग्रंथ नहीं है बल्कि जीवन जीने की मानक पद्धति है जिस पर चलकर एक श्रेष्ठतर समाज और आदर्श विश्व की स्थापना की जा सकती है।"

इस रामायण सेन्टर के प्रभारी अध्यक्ष श्री राजेन्द्र अरुण लिखते हैं कि "मारीशस विश्व का एकमात्र ऐसा देश है जहाँ संसद में सर्वसम्मति से एक अधिनियम के तहत इसकी स्थापना की गई है। किसी भी देश द्वारा रामायण को दिया गया यह सर्वोत्तम सम्मान है।" यहाँ भगवान रामसीता–हनुमान–शंकर–राधाकृष्ण–दुर्गा आदि की मनोरम मूर्तियाँ हैं। दोनों समय पूजन–अर्चना, रामायण पाठ, सुन्दरकाण्ड एवं रामायण पर गोष्ठियां होती रहती हैं। रामनवमी, तुलसी जयंती पर विशेष आयोजन होते हैं। मैं 21 अगस्त को वहाँ अपने साथियों के साथ श्री अजय रस्तोगी के माध्यम से पहुँचा। उस दिन "भारतीय डायस्पोरा और रामायण" विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था, जिसमें भारत, फिजी, अमेरिका, बाली, जर्मनी, थाईलैंड, इंग्लैण्ड आदि 14 देशों के विद्वानों ने विषय पर विचार व्यक्त किए। मुझे भी अवसर दिया गया। मैंने बड़ों के प्रति आदर भाव, प्रातः काल उठिकै रघुनाथा, मात पिता गुरु नावै माथा– विषय पर विचार रखे। भोपाल से श्री विनोद नागर ने भी विचार प्रस्तुत किये। इसके पूर्व सस्वर संगीतमय भजनों की प्रस्तुति व श्रीरामचन्द्र कृपाल भजमन... आरती तथा सभी को भोजन प्रसादी... एक अविस्मरणीय दिवस रहा मेरे जीवन को आत्मिक आनन्द देने का। 2 मंजिला विशाल भवन, खुला मैदान, यहां से कई धार्मिक पत्रिकाएं निकलती हैं और अनेक भाषाओं की रामायण संकलित हैं। सन् 1969 में स्वामी कृष्णानन्दजी ने रामायण की एक लाख प्रतियां घर–घर प्रदान की थीं। मारीशस में घर–घर में राम विराजे हैं। वे राम की शरण में हैं। पर भारत में राम जन्मभूमि मन्दिर

न्यायालय की शरण में है। मारीशस के इस रामायण सेन्टर पर, गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती, श्रीराम नवमी, श्री हनुमान जयन्ती, माता सीता जन्मोत्सव, वाल्मीकि जयन्ती, श्री रामसीता विवाह के अलावा अनेक उत्सव मनाए जाते हैं। इनके अलावा, सुन्दरकाण्ड पाठ, अखण्ड रामायण पाठ, रामायण सस्वर पाठ प्रशिक्षण, योग, बाल संस्कार केन्द्र तथा भारतीय संगीत शिक्षण, नववर्ष दिवस (चैत्र) आदि अनेक धार्मिक व संस्कार संरक्षण के कार्यक्रम होते हैं जिनमें बालक महिलाएं तथा हर उम्र के लोग उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। सचमुच विश्व का अनोखा स्थान है रामायण सेन्टर।

3. शिव सागर मन्दिर –

एक शहर में समुद्र पर पुल बनाकर लंका सी जगह बनाई गई है, जहां भगवान शंकर, हनुमानजी, श्रीराम–सीता, राधाकृष्ण आदि की मनोरम मूर्तियां हैं।

4. सूरीनाम विलेज मार्केट –

यहां 3–4 मन्दिर देखे। यहाँ पूजा–अर्चना की सामग्रियाँ की दुकानें देखकर मुझे उज्जैन–इलाहाबाद, बनारस की यादें ताजा हो गईं।

5. आध्यात्मिक उपवन (Spiritual Park)–

यहाँ मन्दिर प्रांगण के प्रवेश द्वार पर गणेशजी की बड़ी प्रतिमा, जिसकी पूजा कर अन्दर जाते हैं। यहां जापानी शैली में लकड़ी के विशाल मन्दिर, भगवान गणेशजी की एक मुखी, तीन मुखी, चार मुखी व पंचमुखी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। यहीं शंकर व माता पार्वती तथा कार्तिकेय की खड़ी मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं, सभी काले रंग में।

6. मैं जहाँ होटल में ठहरा था उसके पास ही श्री हनुमानजी का मन्दिर है। पास में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती विद्यालय–छात्रावास है। यहां आर्य समाज के मन्दिर में भी भारतीय दर्शन–संस्कृति का अपार भण्डार देखा। मारीशस के हिन्दू/भारतीय के भवन में मुख्य प्रवेश द्वार की दीवाल पर किसी न किसी देवता लक्ष्मी, गणेश, सरस्वती, हनुमान, शंकर, पार्वती आदि के सुन्दर चित्र हैं तथा भवन के आरम्भिक प्रांगण में एक छोटा सा/मध्यम/बड़ा किसी न किसी देवता का मन्दिर जिसके बारे में बताया गया कि लंका में हनुमान जी को विभीषण का भवन–अलग तरह का दिखा था– "भवन एक पुनि दीख सुहावा– हरि मन्दिर तह भिन्न बनावा"।

यहाँ के निवासी भिन्न से तात्पर्य स्वयं के निवास से पृथक मानकर प्रभु को विराजित करते हैं। हमारे यहाँ प्रायः घर के किसी कोने, अलमारी में छोटा स्थान भगवान के लिए होता है पर वहाँ ऐसा नहीं है। "रामायुध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाए" गोस्वामी जी के शब्दों को मूर्तरूप दे रहे हैं। अतः यह कहना समीचीन होगा कि मारीशस जैसे मन्दिरों में बसता है और इन मन्दिरों में भारत और वाल्मीकि का ये शुभाशीष जब तक इस धरा पर पहाड़ हैं नदियां हैं तब तक रामायण कथा भी रहेगी। मारीशस इसका सुन्दर अप्रमेय उदाहण है।

उस धरा को प्रणाम।

105, इन्दिरा गांधी नगर, इन्दौर–9 मो. 9229466225

izlaxo'k

^l|[kn ØkfUr dk vkHkkl*

j?kukFk i:lkn ljkQ

अनेक क्रान्तियों का उल्लेख सुना है। परन्तु यह एक अनोखी क्रान्ति है। क्रान्तियाँ तुरंत पैदा नहीं हुआ करती, क्योंकि क्रान्ति कोई उन्माद नहीं होती। वर्षानुवर्ष निरन्तर वैचारिक सिंचन करते रहना होता है। कैसी है यह सुखद–क्रान्ति। "शनै शनै विद्वानों के आलेख "वर्तमान" को महत्व देने लगे हैं स्वार्थ से परार्थ और परमार्थ की दिशा में प्रेरणा देने लगे हैं। मोक्ष की इच्छा तो व्यक्ति का सुपर स्वार्थ लगने लगा है। बहुत लम्बे कालखण्ड से व्याप्त 'जन्म–मरण से छुटकारा और परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन की लालसा' जैसी भ्रामक धारणाओं में विवेकी साहित्यकार अब बहते नहीं है। भवसागर पार उतरने की प्रार्थनाएँ भी उन्हें व्यावहारिक नहीं लगने लगी हैं।

"करम् प्रधान बिस्व करि राखा, जो जस करइ सो तस फलु चाखा" वाली चौपाई हमें भटकने से रोकने लगी है। चराचर जगत को सीयराममय देखने की प्रेरणा भी आलेखों में दृष्टिगत होती है। समाज–सेवा, राष्ट्र–सेवा की ओर प्रवृत्त करने के लिए ***"मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत"*** वाला श्रीराम का आदेश उद्धृत किया जाने लगा है। ***"धन्यवाद माँ केकई"*** नामक कविता में कहा गया– वनवासी कर राम को किया राष्ट्र के नाम और घर में रहने को नहीं होते हैं अवतार। इसी प्रकार अनेकों पत्रिकाओं में प्रकाशित चौपाई– ***"राम राष्ट्रहित नृपतनुधारी, सहि संकट किए प्रजाहि सुखारी"*** को तमाम पाठकों ने स्वीकृति दी। किसी ने भी ***"राम तो भक्तों के उद्धार के लिये अवतरित हुए थे"*** ऐसा कहते हुए राग नहीं किया।

एक महत्वपूर्ण अध्याय इस क्रान्ति का है– इस पत्रिका के प्रत्येक अंक का प्रेरणादायी सम्पादकीय। पत्रिका का प्रयोजन प्रकाशित करा देने वाले ये सम्पादकीय–आलेख सबके लिये पाथेय हैं, संबल भी हैं। भावीपीढ़ी को संस्कार देने तथा सर्वसाधारण को "वर्तमान" से अवगत कराने की प्राणपण से चेष्टा सम्पादक महोदय रखते आये हैं।

हमारे पुराने धर्म ग्रंथों में भरी हुई असंभव सी लगने लगी बातों की युवा वर्ग खिल्ली उड़ाता है और उनका पठन/अध्ययन त्याज्य कर रहा है। यह भली भाँति

जानकर ही रामायण, हनुमान चालीसा, गीता, भागवत आदि का घिसा–पिटा विश्लेषण न करते हुए युवावर्ग को सुपाच्य एवं आज के संदर्भ में मार्गदर्शक अर्थ प्रस्तुत करने की दिशा में साहित्यसेवी–समुदाय आगे बढ़ रहा है। "सुखद क्रांति" से यही आशय है।

तथापि, लेखक वृन्द में कोई न कोई पचड़ा या संशय पालने में भी सिद्धहस्त हैं। यथा– हनुमान चालीसा तुलसीदास जी की रचना नहीं है। हमारे शास्त्रों में दूरी की इकाई को "योजन" कहा गया किन्तु कहीं भी उसकी परिभाषा ढंग से प्राप्त नहीं है। माथापच्ची चलती है कि आज की भाषा में योजन कितने किलोमीटर का है ?इनमें समय व्यर्थ करने का क्या उपयोग ?यदि हमारे जीवन का सार्थक उद्देश्य निश्चित है अथवा साहित्य सेवा में प्रयोजन के प्रति हम स्पष्ट हैं तो व्यर्थ के संशयों में पड़ेंगे ही नहीं। श्रीकृष्ण ने कहा है– संशयात्मा विनश्यति अर्थात् संशययुक्त पुरुष परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। उसके सुखों का भी नाश हो जाता है।

जो क्रान्ति चल पड़ी है उसमें सदैव सावधानी और दृष्टिकोण बना रहे कि पाठकों और विशेषतः युवावर्ग को हम किस प्रकार स्वार्थी पूजा पाठादि से, आडम्बरयुक्त धार्मिक आयोजन, देवताओं के महिमागान, पाप–पुण्य इत्यादि के भँवर से निजात दिला सकें और शास्त्रों का सम्यक् भावार्थ कर–करके उन्हें समाजोन्मुखी बना सकें। किस प्रकार हम देशवासियों का रामराज्य की ओर बढ़ते कदमों के साथ तालमेल करा लेंवे।

इस सुखद क्रान्ति में रोड़े पैदा करेंगे– विवादास्पद् विषय। इनकी उपेक्षा करना ही उत्तम है। इस सुखद क्रान्ति की गति धीमी कर देंगे वे आलेख जो मात्र विद्वत्ता के प्रदर्शन के लिए लिखे जाएंगे, जिनका कि "संदेश" की दृष्टि से कोई लेना–देना नहीं होगा।

मित्रों! बिना सकारात्मक प्रयोजन वाले आयोजनों की बाढ़ पहले से ही विद्यमान है। हम, इस सुखद क्रान्ति के वाहक बनें और राष्ट्र को सबल सजग बनाने के प्रयोजन से प्रेरणादायी रचनाएँ अधिक सृजित करें। इति शुभम्।

रामनाम सेवा सत्संग, सी–3, श्रीराम सोसाइटी, सेक्टर 19 सी/355, कोपरखैरगे, नवीमुंबई 400709

leh{kk

: l d r y l hnk l

iHkn ;ky feJk

कृति : गंगा और वोल्गा के सेतु (रूस के तुलसीदास)
संपादन : डॉ. रमेश वर्मा
उत्प्रेरक : बद्रीनारायण तिवारी
प्रकाशक : साहित्य संगम, इलाहाबाद मूल्य : 200 रूपये

मानस संगम कानपुर के संस्थापक डॉ. बद्रीनारायण तिवारी की सत्प्रेरणा और डॉ. रमेश वर्मा के सम्पादकत्व में ***"गंगा और वोल्गा के सेतु अ. वरान्निकोव"*** का प्रकाशन एक महती ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति है। यह अपने आप में ही कितना बड़ा आश्चर्य है कि जब सारा संसार द्वितीय विश्व युद्ध की आंच में तप रहा था, तब रूस की साम्यवादी सरकार ने अपने समय के चार सौ वर्ष पूर्व के भारत की गंगा के किनारे वाले गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का गद्य और पद्य में अनुवाद करने में निरत वरान्निकोव को न केवल उनकी एकांत साधना के लिए स्थान सुलभ कराया अपितु उन्हें इस कार्य के लिए रूस का सर्वोच्च सम्मान "लेनिन पदक" भी प्रदान किया। रूस के इस परम सत्यधर्मा का सुस्मरण यदि भारत और भारतीय संस्कृति के सुपोषक इन दो देशों के भूगोल, इतिहास, साहित्य और संस्कृति की समतुल्य समग्रता में देखते हैं तो यह सर्वथा स्तुत्य कार्य ही है। रूस की यात्रा करने वाले भारतीय और भारत की यात्रा करने वाले रूसी पर्यटक भले ही भाषागत अवरोध को पार करने में कठिनाई पाते हों, किन्तु उनकी इतिहास, संस्कृति और साहित्य की सनातन और सार्वभौम समानताओं में झांकने की ललक उन्हें सदा से भ्रातृत्व की अटूट डोर में बांधती है। वर्ष 1989 में रूस जाने पर मैंने इसका आत्मीय स्तर पर अनुभव किया था क्योंकि मेरी सबसे बड़ी लालसा उस देश और स्थान को देखने की एक अदम्यता भी थी जहां तुलसी का वारान्निकोव जैसा एक परमोपासक उत्पन्न हुआ था।

इस संग्रह में अनेक दुर्लभ शोध पूर्ण आलेख और प्रतिस्मृति जैसे बारान्निकोव का अवदान– डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित, बढ़ई का बेटा बना रूस का तुलसीदास–वचनेश त्रिपाठी "साहित्येंदु" तथा "साम्यलोक की एक असाम्य विभूति अकादमिक वारान्निकोव", –शम्भुनाथ टंडन संकलित है। तुलसी उपवन में वरान्निकोव की मूर्ति की स्थापना मानस प्रेमीजनों का उस वोल्गा तीर वासी का समुचित सम्मान है जिसने अपनी समाधि पर देवनागरी में यह सनातन सूत्र उत्कीर्ण कराने की अभिलाषा प्रकट की थी– 'भलो भलाई पे लहहिं' ।

35, ईडन गार्डन, चूनाभट्टी, कोलार रोड, भोपाल 16 (9425079072)

izfr"Bku lekpkj

g"kkYyk l d lkFk c l rkR l o euk;k x;k

महिला मानस मंच द्वारा बसंतोत्सव–2019 सोल्लास दिनांक 10 फरवरी को मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल में आयोजित किया गया। आयोजन में श्रीमती सुशीला शुक्ला, श्रीमती जानकी शुक्ला, श्रीमती आशासिंह कपूर, श्री कमलेश जैमिनी, श्री महेश सक्सेना, श्री राजेश भार्गव एवं श्रीमती आरती सिंह चौहान ने विशेष रुचि लेकर कार्यक्रम को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

निर्णायकों के रूप में श्री ओमप्रकाश शास्त्री, श्रीमती सुशीला शुक्ला एवं जानकी शुक्ला ने पूर्ण निष्पक्षता के साथ अपने निर्णय दिये।

कुल 23 मंडलियों ने भजन प्रस्तुति दी तथा कार्यक्रम में लगभग 500 श्रोताओं की उपस्थिति रही। अध्यक्षता श्रीमती ममता गुरु ने की। कार्यक्रम में निम्न पुरस्कार दिये गये –

श्री नारायण प्रसाद पस्तारिया स्मृति पुरस्कार (प्रथम)
रामानुज भजन मंडली (श्रीमती युगल किशोरी मिश्रा) *7000.00*
श्री लक्ष्मीदेवी पस्तारिया स्मृति पुरस्कार (द्वितीय)
न्यू अपराजिता भजन मंडली *5000.00*
श्री गिरीशकुमार पस्तारिया पुरस्कार (तृतीय)
श्रीमती गीता भाटी भजन मंडली *4000.00*

vk'khokn

पत्रिका मुझे नियमित मिल रही है। उसे देख जाने का समय निकाल ही लेता हूं। आपका संपादकीय तो अवश्यमेव सर्वप्रथम पढ़ता हूँ। सदैव उसमें हटकर कुछ विचारोत्तेजक बात होती है। सच्चा काल–बोध और सच्चा लोकमन भी।

नाथद्वार साहित्य समिति ने आपको 'संपादक रत्न' सम्मान से अलंकृत किया। 'गुन न हेरानो गुनगाहक हेरानो है' सूक्ति हम सुनते आए हैं। सच भी है।

रमेश चंद्र शाह
एम–4, निराला नगर, भोपाल (म.प्र.)